

"...नयी शलवार ने उसकी चाल में एक नजाकत और एक नया मतवालापन पैदा कर दिया था। उसकी चाल में अभिमान की भावना पैदा हो गयी। फिर उसने एक अनोखी अदा से जो गुल को बहुत प्यारी लगी, अपना सिर गुल के कन्धे पर रख दिया। वे कुछ समय तक इसी प्रकार चलते रहे, बाँहों में बाँहें डाले। दर्जी का घर ओट में छिप गया था। धरती पर चीड़ के पीले-पीले नुकीले झूमर बिछे हुए थे और उनके पाँवों के स्पर्श से रेशम के कपड़ों की भाँति सरसराते थे मानो धरती ने भी नयी शलवार पहन ली थी।"

कृश्न चंदर



पाँच बेहतरीन कहानियाँ

पाँच बेहतरीन कहानियाँ

कृश्न चंदर

क्रम

कालू भंगी



मैंने इससे पहले हज़ार बार कालू भंगी के बारे में लिखना चाहा है लेकिन मेरी कलम हर बार यह सोचकर रुक गयी है कि कालू भंगी के सम्बन्ध में लिखा ही क्या जा सकता है! भिन्न-भिन्न कोणों से मैंने उसके जीवन को देखने, परखने, समझने की कोशिश की है, लेकिन कहीं वह टेढ़ी रेखा दिखाई नहीं देती जिससे कोई दिलचस्प कहानी बन सकती हो। दिलचस्प होना तो एक ओर, कोई सीधी-सादी फाकी-रूखी कहानी भी तो नहीं लिखी जा सकती कालू भंगी के सम्बन्ध में। फिर न जाने क्या बात है, हर कहानी का आरम्भ करते हुए मेरे मस्तिष्क में कालू भंगी आ खड़ा होता है, मुझसे मुसकराकर पूछता है :

"छोटे साहब, मुझ पर कहानी नहीं लिखोगे—कितने वर्ष हो गये हैं तुम्हें लिखते हुए?"

"आठ वर्ष।"

"कितनी कहानियाँ लिखी हैं तुमने?"

"साठ और दो, बासठ।"

"मुझमें क्या बुराई है छोटे साहब! तुम मेरे बारे में क्यों नहीं लिखते? देखो, कब से मैं उस कहानी की प्रतीक्षा में खड़ा हूँ। तुम्हारे मस्तिष्क के एक कोने में एक समय से हाथ बाँधे खड़ा हूँ, छोटे साहब, मैं तो तुम्हारा पुराना सेवक हूँ, कालू भंगी। आखिर तुम मेरे बारे में क्यों नहीं लिखते?"

और मैं उत्तर नहीं दे पाता। इतना सीधा-सपाट जीवन रहा है कालू भंगी का कि मैं उसके सम्बन्ध में कुछ भी तो नहीं लिख सकता। ऐसा नहीं है कि मैं उसके बारे में कुछ लिखना नहीं चाहता। वास्तव में बहुत देर से मैं कालू भंगी के सम्बन्ध में लिखने का विचार कर रहा हूँ परन्तु कभी लिख नहीं सका, हज़ार कोशिशों के बावजूद नहीं लिख सका। इसलिए आज तक कालू भंगी अपनी पुरानी झाड़ू लिये अपने बड़े-बड़े नंगे घुटने लिए, अपने फटे-फटे खुरदरे, बेढंगे पाँव लिये, अपनी सूखी टाँगों पर उभरी दरीदें लिये, अपने कूल्हों की उभरी-उभरी हड्डियाँ लिये, अपने भूखे पेट और उसकी सूखी चमड़ी की काली सलवटें लिये अपनी मुर्झाई हुई छाती, धूल से अटे बालों की झाड़ियाँ लिये, अपने सिकुड़े-सिकुड़े होंठों, फैले-फैले नथनों, झुर्रियों-भरे गालों और अपनी आँखों के अन्धकारमय गढ़ों के ऊपर नंगी चिन्दियाँ उभारे मेरे मस्तिष्क के कोने में खड़ा है। अब तक कई पात्र आये और अपनी जीवनियाँ बताकर, अपना महत्त्व जताकर चले गये। सुन्दर स्त्रियाँ, सुन्दर काल्पनिक मूर्तियाँ, शैतान के चेहरे, इस मस्तिष्क के रंग-रोगन से परिचित हुए। इसकी चारदीवारी में अपने दीपक जलाकर चले गये, लेकिन कालू भंगी बराबर अपनी झाड़ू सँभाले उसी तरह खड़ा रहा। उसने उस घर के भीतर आनेवाले प्रत्येक पात्र को देखा है। उसे रोते हुए, गिड़गिड़ाते हुए, प्रेम करते हुए, घृणा करते हुए, सोते हुए, जागते हुए, कहकहे लगाते हुए, व्याख्यान देते हुए, जीवन के हर रंग में, हर सतह पर, हर मंजिल में देखा है। बचपन से बुढ़ापे और बुढ़ापे से मृत्यु तक, उसने हर अपरिचित को इस घर के दरवाज़े के भीतर झाँकते हुए देखा है। और

उसे भीतर आते देखकर उसके लिए रास्ता साफ कर दिया है। वह स्वयं परे हट गया है, एक भंगी की तरह हटकर खड़ा हो गया है; यहाँ तक कि कथा आरम्भ होकर समाप्त भी हो गयी है, यहाँ तक कि पात्र और दर्शक दोनों विदा हो गये हैं, लेकिन कालू भंगी उसके बाद भी वहीं खड़ा है। अब केवल एक पग उसने आगे बढ़ा लिया है और मस्तिष्क के बीच में आ गया है, ताकि मैं उसे अच्छी तरह देख लूँ। उसकी नंगी चिन्दिया चमक रही है। होंठों पर एक मूक प्रश्न है। एक समय से मैं उसे देख रहा हूँ। समझ में नहीं आता, क्या लिखूँगा इसके बारे में। लेकिन आज यह भूत ऐसे नहीं मानेगा! इसे कई वर्षों तक टाला है, आज इसे भी विदा कर दूँ...!

मैं सात वर्ष का था जब मैंने पहली बार कालू भंगी को देखा। उसके बीस वर्ष बाद, जब वह मरा, मैंने उसे इसी हालत में देखा। कोई फर्क न था, वही घुटने, वही पाँच, वही रंगत, वही चेहरा, वही चिन्दिया, वही टूटे हुए दाँत, वही झाड़ू, जो मालूम होता था कि माँ के पेट से उठाये चला आ रहा है। कालू भंगी की झाड़ू उसके शरीर का एक अंग लगती थी। वह प्रतिदिन रोगियों का मल-मूत्र साफ करता था, डिस्पेन्सरी में फिनायल छिड़कता था, फिर डाक्टर साहब और कम्पौंडर साहब के बंगलों की सफाई का काम करता था। कम्पौंडर साहब की बकरी को और डाक्टर साहब की गाय को चराने के लिए जंगल में ले जाता और दिन ढलते ही उन्हें वापस अस्पताल में ले आता और उन्हें थान पर बाँधकर अपना खाना तैयार करता और उसे खाकर सो जाता। बीस वर्ष से मैं उसे यही काम करते हुए देख रहा था—प्रतिदिन, नियमपूर्वक। इस बीच में वह कभी एक दिन के लिए भी बीमार नहीं हुआ। यह बात आश्चर्यजनक अवश्य थी, लेकिन इतनी भी नहीं कि केवल इसी के लिए एक कहानी लिखी जाए। खैर यह कहानी तो ज़बरदस्ती लिखवाई जा रही है। आठ वर्ष से मैं इसे टालता आया हूँ, लेकिन यह व्यक्ति नहीं मानता, ज़बरदस्ती से काम ले रहा है। यह अत्याचार मुझ पर भी है और आप पर भी।

मुझ पर इसलिए कि मुझे लिखना पड़ रहा है, आप पर इसलिए कि आपको इसे पढ़ना पड़ रहा है। यद्यपि इसमें ऐसी कोई बात है ही नहीं जिसके लिए सरदर्दी मोल ली जाए। लेकिन क्या किया जाए, कालू भंगी की मौन दृष्टि के भीतर एक ऐसा विनय निहित है, एक ऐसी विवश मूकता, ऐसी गहराई है कि मुझे उसके बारे में लिखना पड़ रहा है और लिखते-लिखते यह भी सोचता हूँ कि उसके जीवन के सम्बन्ध में क्या लिखूँगा। कोई पहलू भी तो ऐसा नहीं जो दिलचस्प हो, कोई कोना ऐसा नहीं जो अन्धकारमय हो, कोई कोण ऐसा नहीं जो चुम्बक जैसा आकर्षण रखता हो, फिर न जाने क्यों वह आठ वर्ष से बराबर मेरे मस्तिष्क में खड़ा है। इसमें उसकी हठधर्मी के अतिरिक्त और तो कुछ नज़र नहीं आता। जब मैंने 'आंगी' की कहानी में चाँदनी के खलिहान सजाये थे और 'यरकानियत' के रोमांचकारी कोण से संसार को देखा था, उस समय भी यह यहीं खड़ा था। जब मैंने रोमांच के आगे पग बढ़ाए और 'हुस्न और हैवान' की रंग-बिरंगी दशाएँ देखता हुआ 'टूटे हुए तारों' को छूने लगा उस समय भी यह यहीं खड़ा था। जब मैंने 'बालकनी' से झाँककर अन्नदाताओं की निर्धनता देखी और पंजाब की धरती पर खून की नदियाँ बहती देखकर अपने वहशी कोने का ज्ञान प्राप्त किया, उस समय भी यह मेरे मस्तिष्क के दरवाज़े पर खड़ा था, चुपचाप, बिना हिले-डुले। मगर अब यह अवश्य जाएगा। अब इसे जाना ही होगा। अब मैं इसके बारे में लिख रहा हूँ। भगवान के लिए नीरस, फीकी-सी कहानी आप भी सुन लीजिए ताकि यह यहाँ से दूर दफन हो जाए और मुझे इसकी गन्दी संगत से छुटकारा मिल जाए और यदि आज भी मैंने इसके बारे में न लिखा और न आपने इसे पढ़ा तो यह आठ वर्ष बाद भी यहीं जमा रहेगा और सम्भव है जीवन-भर यहीं खड़ा रहे।

लेकिन परेशानी तो यह है कि इसके सम्बन्ध में लिखा क्या जा सकता है? कालू-भंगी के माँ-बाप भंगी थे और जहाँ तक मेरा विचार

है इसके सब पूर्वज भंगी थे, और सैकड़ों वर्ष से यहीं रहते चले आये थे। इसी तरह इसी दशा में। फिर कालू भंगी ने शादी न की थी, उसने कभी प्रेम न किया था, आश्चर्य तो यह है कि वह कभी अपने गाँव से बाहर नहीं गया था। वह दिन-भर अपना काम करता और रात को सो जाता और प्रातः उठकर फिर अपने काम में जुट जाता। बचपन ही से वह इसी प्रकार करता चला आया था।

हाँ, कालू भंगी में एक बात अवश्य दिलचस्प थी और वह यह कि उसे अपनी नंगी चिन्दिया पर किसी जानवर जैसे गाय या भैंस की जिह्वा फिराने से बड़ा आनन्द मिलता था। प्रायः दोपहर के समय मैंने उसे देखा कि नीले आकाश-तले, हरी घास के मखमल जैसे फर्श पर, खुली धूप में वह हस्पताल के पास के एक खेत की मेंड पर उकड़ूँ बैठा है और गाय उसका सिर चाट रही है बार-बार। और वह वहीं अपना सिर चटवाते-चटवाते ऊँघ-ऊँघकर सो गया है। उसे इस प्रकार सोते देखकर मेरे हृदय में प्रसन्नता का एक विचित्र-सा भाव उजागर होने लगता था और विश्व के थके-थके स्वप्निल सौन्दर्य का भ्रम होने लगता था। मैंने अपने छोटे-से जीवन में संसार की सुन्दरतम स्त्रियाँ, नवजात कलियाँ, संसार के सुन्दरतम दृश्य देखे हैं, लेकिन न जाने क्यों ऐसी सरलता, ऐसा सौन्दर्य, ऐसी शान्ति किसी दृश्य में नहीं देखी। जब मैं सात वर्ष का था और वह खेत बहुत बड़ा और विस्तृत दिखाई देता था और आकाश बहुत नीला और निर्मल और कालू भंगी की चिन्दिया शीशे की तरह चमकती थी; और गाय की जिह्वा धीरे-धीरे उसकी चिन्दिया चाटती हुई, जैसे उसे सहलाती हुई, कुसर-कुसर का स्वप्निल स्वर उत्पन्न करती जाती थी। जी चाहता था मैं भी उसी तरह अपना सिर घुटाकर उस गाय के नीचे बैठ जाऊँ और ऊँघता-ऊँघता सो जाऊँ। एक बार मैंने ऐसा करने की कोशिश भी की तो पिताजी ने मुझे वह पीटा, वह पीटा—और मुझसे अधिक कालू भंगी को वह पीटा कि मैं भय से चीखने लगा कि कालू भंगी उनकी ठोकरों से मर न जाए। लेकिन कालू भंगी को

इतनी मार खाकर भी कुछ न हुआ। दूसरे दिन वह नियमानुसार झाड़ू देने के लिए हमारे बंगले में मौजूद था।

कालू भगी को जानवरों से बड़ा लगाव था। हमारी गाय तो उस पर जान छिड़कती थी, और कम्पौंडर साहब की बकरी भी। यद्यपि बकरी बड़ी बेवफ़ा होती है, नारी से भी अधिक, लेकिन कानू भंगी की बात और थी। उन दोनों पशुओं को पानी पिलाये तो कालू भंगी, चारा खिलाए तो कालू भंगी, जंगल में चराने ले जाए तो कालू भंगी। वे उसके एक-एक संकेत को इस प्रकार समझ जातीं जैसे कोई व्यक्ति किसी मनुष्य के बच्चे की बातें समझता है। मैं कई बार कालू भंगी के पीछे गया हूँ। जंगल के रास्ते में वह उन्हें बिलकुल खुला छोड़ देता था, लेकिन फिर भी गाय और बकरी दोनों उसके कदम से कदम मिलाये चले आते थे—जैसे तीन मित्र सैर करने निकले हों। रास्ते में गाय ने हरी घास देखकर मुँह मारा तो बकरी भी झाड़ी से पत्तियाँ खाने लगी और कालू भंगी है कि सुम्बलू तोड़-तोड़कर खा रहा है और बकरी के मुँह में डाल रहा है और स्वयं भी खा रहा है; और आप ही आप बातें कर रहा है और उससे भी बराबर बातें किये जा रहा है और वे दोनों पशु भी गुर्राकर, कभी कान फटफटाकर, कभी पाँव हिलाकर, कभी दुम दबाकर, कभी नाचकर, कभी गाकर, हर प्रकार से उसकी बातों में भाग ले रहे हैं। अपनी समझ में तो कुछ नहीं आता कि ये लोग क्या बातें करते थे। फिर कुछ क्षणों के बाद कालू भंगी आगे चलने लगता तो गाय भी चरना छोड़ देती और बकरी झाड़ी से परे हट जाती और कालू भंगी के साथ-साथ चलने लगती। आगे कहीं छोटी-सी नदी आती या कोई नन्हा-सा चश्मा तो कालू भंगी वहीं बैठ जाता बल्कि लेटकर वहीं चश्मे के स्तर से अपने होंठ मिला देता और पशुओं की तरह पानी पीने लगता और उसी प्रकार वे दोनों पशु भी पानी पीने लगते क्योंकि बेचारे मनुष्य तो थे नहीं कि होंठों से पी सकते। उसके बाद यदि कालू भंगी घास पर लेट जाता तो बकरी भी उसकी टाँगों के पास अपनी टांगे सिकोड़कर

प्रार्थना करने के ढँग पर बैठ जाती, और गाय तो इस प्रकार उसके निकट ही बैठती कि मुझे मालूम होता कि वह कालू भंगी की पत्नी है और अभी-अभी खाना पकाकर हटी है। उसकी हर नज़र में और चेहरे के हर उतार-चढ़ाव में एक शान्तिपूर्ण गृहस्थ जीवन झलकने लगता और जब वह जुगाली करने लगती तो मुझे मालूम होता जैसे कोई बड़ी सुघड़ पत्नी करोशिया लिये कशीदाकारी कर रही है, या कालू भंगी के लिए स्वेटर बुन रही है।

इस गाय और बकरी के अतिरिक्त एक लंगड़ा कुत्ता भी था जो कालू भंगी का बड़ा घनिष्ठ मित्र था। वह लंगड़ा था, इस कारण ही अन्य कुत्तों के साथ अधिक चल-फिर न सकता था और इसी कारण प्रायः अन्य कुत्तों से पिटता और भूखा रहता और घायल रहता था। कालू भंगी प्रायः उसकी मरहम-पट्टी और पालन-पोषण में लगा रहता है। कभी तो उसे साबुन से नहलाता, कभी उसकी चिचड़ियाँ दूर करता और कभी उसे मक्की की रोटी का सूखा टुकड़ा देता; लेकिन यह कुत्ता बड़ा स्वार्थी था। दिन में केवल दो बार कालू भंगी से मिलता, दोपहर को और शाम को। और खाना खाकर, घाव पर मरहम लगवाकर फिर घूमने के लिए चल देता। कालू भंगी और लंगड़े कुत्ते की मुलाकात बड़ी संक्षिप्त होती थी, लेकिन बड़ी दिलचस्प। मुझे तो वह कुत्ता एक आँख न भाता था, लेकिन कालू भंगी उससे बड़े आदर से मिलता।

उसके अतिरिक्त कालू भंगी का जंगल के हर पशु-पक्षी से परिचय था। रास्ते में उसके पाँव-तले कोई कीड़ा आ जाता तो वह उसे उठाकर झाड़ी पर रख देता। कहीं कोई नेवला बोलने लगता तो वह उसकी बोली में उसका उत्तर देता। तीतर, रतगल्ला, गुटारी, लालचिड़ा : हर पक्षी की बोली वह जानता था। इस दृष्टि से वह राहुल सांकृत्यायन से भी बड़ा पंडित था। कम-से-कम मेरे जैसे सात वर्ष के बालक की दृष्टि में तो वह मुझे अपने माता-पिता से भी अच्छा मालूम होता था; और फिर वह मक्की का भुट्टा ऐसा मजेदार

तैयार करता था और उसे इस तरह हल्की आँच पर भूनता था जैसे वह वर्षों से उस भुट्टे को जानता हो। एक मित्र की तरह वह भुट्टे से बातें करता। इस नरमी और प्यार से उससे पेश आता जैसे वह भुट्टा उसका अपना सम्बन्धी या सगा भाई हो। और लोग भी भुट्टा भूनते थे लेकिन वह बात कहाँ! ऐसे कच्चे, बेस्वाद और मामूली-से भुट्टे होते थे वे कि उन्हें बस मक्की का भुट्टा ही कहा जा सकता था; लेकिन कालू भंगी के हाथों में पहुँचकर वही भुट्टा कुछ-का-कुछ हो जाता; और जब वह आग पर सिंककर बिलकुल तैयार हो जाता तो बिलकुल एक नयी-नवेली दुलहिन की तरह, शादी का जोड़ा पहने, सुनहला-सुनहला चमकता नज़र आता। मेरे ख्याल में स्वयं भुट्टे को यह अनुमान हो जाता था कि कालू उससे कितना प्रेम करता है, अन्यथा प्रेम के बिना उस निर्जीव वस्तु में उतनी सुन्दरता कैसे उत्पन्न हो सकती थी। मुझे कालू भंगी के हाथ के सिंके हुए भुट्टे खाने में बड़ा आनन्द आता था और मैं उन्हें बड़े मजे में छुप-छुपकर खाता था। एक बार पकड़ा गया तो बड़ी ठुकाई हुई। बेचारा कालू भी पीटा, लेकिन दूसरे दिन वह फिर बँगले पर झाड़ू लिए उसी तरह हाज़िर था।

और बस कालू भंगी के सम्बन्ध में और कोई दिलचस्प बात याद नहीं आ रही। मैं बचपन से जवानी में आया और कालू भंगी वैसे-का-वैसा रहा। मेरे लिए अब वह कम दिलचस्प हो गया था, बल्कि यों कहिये कि मुझे उससे किसी प्रकार की दिलचस्पी न रही थी। हाँ, कभी-कभी उसका व्यक्तित्व मुझे अपनी ओर खिंचता। यह उन दिनों की बात है जब मैंने नया-नया लिखना शुरू किया था। मैं अध्ययन के लिए उससे प्रश्न करता और नोट लेने के लिए फाउंटेन पेन और पैड के साथ रख लेता।

"कालू भंगी! तुम्हारे जीवन में कोई ख़ास बात है?"

"कैसी छोटे साहब?"

"कोई ख़ास बात, अजीब अनोखी, नयी?"

"नहीं, छोटे साहब!" (यहाँ तक तो निरीक्षण कोरा रहा। अब आगे चलिए, सम्भव है...)

"अच्छा, तुम यह बताओ, तुम तनखाह लेकर क्या करते हो?" हमने दूसरा सवाल पूछा।

"तनखाह लेकर क्या करता हूँ!" वह सोचने लगता, "आठ रुपये मिलते हैं मुझे..." वह फिर उँगलियों पर गिनने लगता, "चार रुपये का आटा लाता हूँ...एक रुपये का नमक, एक रुपये का तम्बाकू, आठ आने की चाय, चार आने का गुड़, चार आने का मसाला...कितने रुपये हो गये, छोटे साहब?"

"सात रुपये।"

"हाँ, सात रुपये! हर महीने एक रुपया बनिये को देता हूँ, कपड़े सिलवाने के लिए उससे कर्ज़ लेता हूँ ना? साल में दो जोड़े तो चाहिए। और छोटे साहब! कहीं बड़े साहब एक रुपया तनखाह में बढ़ा दें तो मज़ा आ जाए।"

"वह कैसे?"

"घी लाऊँगा एक रुपये का और मक्की के पराँठे खाऊँगा। कभी पराँठे नहीं खाये मालिक! बड़ा जी चाहता है।"

अब बोलिये, इन आठ रुपयों पर कोई क्या कहानी लिखे?

फिर जब मेरी शादी हो गयी, जब रातें जवान और चमकीली होने लगतीं और निकट के जंगल से शहद और कस्तूरी और जंगली गुलाब की लपटें आने लगतीं, और हिरन चौकड़ियाँ भरते हुए दिखाई देते, और तारे झुकते-झुकते कानों में खुसर-फुसर करने लगते, और किसी के रसीले होंठ, आनेवाले चुम्बनों का खयाल करके काँपने लगते—उस समय भी मैं कालू भंगी के सम्बन्ध में कुछ लिखना चाहता और पेंसिल-कागज लेकर उसके पास जाता।

"कालू भंगी, तुमने ब्याह नहीं किया?"

"नहीं, छोटे साहब!"

"क्यों?"

''इस इलाके में मैं एक भंगी हूँ, और दूर-दूर तक कोई भंगी नहीं है छोटे साहब! फिर हमारी शादी कैसे हो सकती है?''

(लीजिए, यह रास्ता भी बन्द हुआ)

''तुम्हारा जी नहीं चाहता कालू भंगी?'' मैंने दुबारा कोशिश करके कुरेदना चाहा।

''क्या साहब?''

''प्रेम करने को जी चाहता है तुम्हारा? शायद किसी से प्रेम किया होगा तुमने, जभी तुमने अभी तक शादी नहीं की।''

''प्रेम क्या होता है छोटे साहब?''

''औरत से प्रेम करते हैं लोग।''

''प्रेम कैसे करते हैं साहब? शादी तो ज़रूर करते हैं सब लोग। बड़े लोग प्रेम भी करते होंगे छोटे साहब! लेकिन हमने नहीं सुना, वह जो कुछ आप कह रहे हैं। रही शादी की बात, यह मैंने आपको बता दी है। कैसे होती मेरी शादी आप बताइए!''

(हम क्या बताएँ खाक!)

''तुम्हें दुख नहीं है कालू भंगी?''

''किस बात का छोटे साहब?''

हारकर मैंने उसके सम्बन्ध में लिखने का विचार छोड़ दिया।

आठ वर्ष हुए कालू भंगी मर गया। वह, जो कभी बीमार नहीं हुआ था, अचानक ऐसा बीमार पड़ा कि फिर कभी खाट से न उठा। उसे हस्पताल में दाखिल कर लिया गया था। वह अलग वार्ड में रहता था। कम्पौंडर दूर से उसके होंठ में दवा उँड़ेल देता और एक चपरासी उसके लिए खाना रख आता। वह अपने बरतन स्वयं साफ करता, अपना बिछौना स्वयं बिछाता, अपना मल-मूत्र स्वयं साफ करता और जब वह मर गया तो उसकी लाश को पुलिसवालों ने ठिकाने लगा दिया, क्योंकि उसका कोई वारिस नहीं था। वह हमारे यहाँ बीस वर्ष से रहता था, लेकिन हम कोई उसके सम्बन्धी थोड़े थे, इसलिए उसका अन्तिम वेतन भी सरकार ने ज़ब्त कर लिया, क्योंकि उसका कोई वारिस नहीं था। और जब वह मरा उस दिन भी कोई विशेष बात न हुई। प्रतिदिन की तरह उस दिन भी हस्पताल खुला। डॉक्टर ने नुस्खे लिखे, कम्पौंडर ने तैयार किये, रोगियों ने दवा ली और घर लौट आये। फिर रोज़ की तरह हस्पताल भी बन्द हुआ और घर आकर हम सबने आराम से खाना खाया। रेडियो सुना और लिहाफ ओढ़कर सो गये। प्रातः उठे तो पता चला कि पुलिसवालों ने दया-भाव से कालू भंगी की लाश ठिकाने लगा दी। इस पर डॉक्टर साहब की गाय ने और कम्पौंडर साहब की बकरी ने दो दिन तक न कुछ खाया, न कुछ पिया और वार्ड के बाहर खड़े-खड़े बेकार चिल्लाती रहीं। पशुओं की जाति थी न आखिर!

अरे, तू झाड़ू लेकर आ पहुँचा? आखिर तू चाहता क्या है, बता?

कालू भंगी अभी तक वहाँ खड़ा है।

क्यों भई, अब तो मैंने सब कुछ लिख दिया; वह सब कुछ जो मैं तुम्हारे सम्बन्ध में जानता था। अब भी यहीं खड़े परेशान कर रहे हो, भगवान के लिए चले जाओ। क्या मुझसे कुछ छूट गया है; कोई भूल हो गयी है? तुम्हारा नाम कालू, पेशा भंगी, इस इलाके से कभी बाहर नहीं गये, विवाह नहीं किया, प्रेम नहीं किया, जीवन में कोई विशेष घटना नहीं, कोई अचम्भा नहीं—जैसे प्रेमिका के होंठों में होता है, अपने बच्चे के प्यार में होता है, ग़ालिब के काव्य में होता है। कुछ भी तो नहीं हुआ तुम्हारे जीवन में! फिर मैं क्या लिखूँ—और क्या लिखूँ! तुम्हारा वेतन आठ रुपये, चार रुपये का आटा, एक रुपये का नमक एक रुपये का तम्बाकू, आठ आने की चाय, चार आने का गुड़, चार आने का मसाला—सात रुपये, और एक रुपया बनिये का—आठ रुपये हो गये। लेकिन आठ रुपये में कहानी नहीं होती, आजकल तो पचास-पचास, सौ में कहानी नहीं होती, लेकिन आठ रुपये में तो कहानी हो ही नहीं सकती। फिर मैं तुम्हारे बारे में क्या लिख सकता हूँ? अब खिलजी ही को लो, हस्पताल में कम्पौंडर है, बत्तीस रुपये वेतन पाता है, पुरखाओं में निचले मध्यम वर्ग के

माँ-बाप मिले थे, जिन्होंने मिडिल तक पढ़ा दिया। फिर खिलजी ने कम्पौंडरी की परीक्षा पास कर ली। वह जवान है, उसके चेहरे पर रंग है। यह जवानी, यह रंगत कुछ चाहती है। वह श्वेत लट्ठे की सलवार पहन सकता है, कमीज़ पर कलफ लगा सकता है। बालों में सुगन्धित तेल लगाकर कंघी कर सकता है। सरकार ने उसे रहने के लिए एक छोटा-सा क्वार्टर भी दे रखा है। डाक्टर चूक जाए तो फीस भी झाड़ लेता है और सुन्दर रोगिणियों से प्रेम भी कर लेता है। वह नूराँ और खिलजी की घटना तुम्हें याद होगी। नूराँ 'भीता' से आयी थी, सोलह-सत्रह वर्ष की अल्हड़ जवानी, चार कोस से ही सिनेमा के रंगीन विज्ञापन की तरह नज़र आ जाती थी। बड़ी मूर्ख थी वह। अपने गाँव के दो नौजवानों का प्रेम पाये बैठी थी। जब नम्बरदार का लड़का सामने आ जाता तो उसकी हो जाती और जब पटवारी का लड़का दिखाई देता तो उसका मन उधर मुड़ने लगता। और वह कोई निश्चय ही न कर पाती। अधिकतर लोग प्रेम को एक बिलकुल स्पष्ट और निश्चित बात मानते हैं, यद्यपि वास्तव में यह बिलकुल अनिश्चित और असमंजस की हालत किये होता है—अर्थात् प्रेम उससे भी है, इससे भी है; और फिर शायद कहीं नहीं है, और है भी तो ऐसा सामयिक कि इधर नजर चूकी, उधर प्रेम गायब! सचाई अवश्य होती है लेकिन स्थिरता नहीं होती है। इसीलिए तो नूराँ कोई निश्चय न कर पाती थी। उसका हृदय नम्बरदार के बेटे के लिए भी धड़कता था और पटवारी के पूत के लिए भी। उसके होंठ नम्बरदार के बेटे के होंठों से मिल जाने के लिए बेचैन हो उठते, और पटवारी के पूत की आँखों में आँखें डालते ही उसका हृदय यों काँपने लगता जैसे चारों ओर समुद्र हो, चारों ओर लहरें हों, और एक अकेली नाव हो; और नाज़ुक-सी पतवार हो और चारों ओर कोई न हो और नाव डोलने लगे, हौले-हौले डोलती जाए और नाज़ुक-सी पतवार नाज़ुक-से हाथों में चलती-चलती थम जाए और श्वास रुकते-रुकते रुक-सा जाए, और आँखें झुकती-झुकती झुक-सी जाएँ और केश बिखरते-बिखरते

बिखर-से जाएँ और लहरें, घूम-घूम-सी घूमती हुई मालूम हों; और बड़े-बड़े दायरे फैलते-फैलते जाएँ, और फिर चारों ओर सन्नाटा फैल जाए, और हृदय एकदम धक् से रह जाए और कोई अपनी बाँहों में भीच ले। हाय! पटवारी के बेटे को देखने से ऐसी ही हालत होती थी नूरां की, और वह कोई निश्चय न कर पाती थी। नम्बरदार का बेटा, पटवारी का बेटा...पटवारी का बेटा, नम्बरदार का बेटा! वह दोनों को वचन दे चुकी थी, दोनों से शादी करने का इकरार कर चुकी थी। दोनों पर मर मिटी थी। परिणाम यह हुआ कि वे आपस में लड़ते-लड़ते लहूलुहान हो गये और जब जवानी का बहुत-सा लहू रगों से निकल गया तो उन्हें अपनी मूर्खता पर बहुत क्रोध आया; और पहले नम्बरदार का बेटा नूराँ के पास पहुँचा और अपनी छुरी से उसका वध करना चाहा, और नूराँ की भुजा पर घाव आये और फिर पटवारी का पूत आया और उसने उसकी जान लेनी चाही और नूराँ के पाँव पर घाव आये; परन्तु वह बच गयी, क्योंकि वह समय पर हस्पताल लायी गयी थी और यहाँ उसकी चिकित्सा शुरू हो गयी। आखिर हस्पताल वाले भी मनुष्य होते हैं। सुन्दरता दिलों पर प्रभाव डालती है, इंजेक्शन की तरह, उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव अवश्य होता है। किसी पर कम, किसी पर अधिक। डॉक्टर साहब पर कम था, कम्पौंडर पर अधिक था। खिलजी नूराँ की सेवा में तन-मन से लगा रहा। नूराँ से पहले बेगमाँ, बेगमाँ से पहले रेशमाँ और रेशमाँ से पहले जानकी के साथ भी ऐसा ही हुआ था, लेकिन वह खिलजी के असफल प्रेम थे, क्योंकि वे औरतें ब्याही हुई थीं। रेशमाँ के तो एक बच्चा भी था, बच्चे के अतिरिक्त माता-पिता थे, और पति थे; और पतियों की दुश्मन नज़रें थीं, जो जैसे खिलजी की छाती में घुसकर उसकी आकांक्षाओं के अन्तिम कोने तक पहुँच जाना चाहती थीं। खिलजी क्या कर सकता? विवश होकर रह जाता। उसने बेगमाँ से प्रेम किया, रेशमाँ और जानकी से भी। वह प्रतिदिन बेगमाँ के भाई को मिठाई खिलाता था। रेशमाँ के नन्हे-से बेटे को दिन-भर उठाये

फिरता था। जानकी को फूलों से बड़ा प्रेम था। वह प्रतिदिन प्रातः उठकर मुँहअँधेरे जंगल की ओर चला जाता और सुन्दर लाला के गुच्छे तोड़कर उसके लिए लाता। सर्वोत्तम औषधियाँ, सर्वोत्तम खाने, सर्वोत्तम देख-भाल; लेकिन समय आने पर जब बेगमाँ अच्छी हुई तो रोते-रोते अपने पति के साथ चली गयी; और जानकी अच्छी हुई तो चलते समय उसने खिलजी के दिये हुए फूल अपनी छाती से लगाये, उसकी आँखें भर आईं और फिर उसने अपने पति का हाथ थाम लिया और चलते-चलते घाटी की ओट में गायब हो गयी। घाटी के अन्तिम छोर पर पहुँचकर उसने मुड़कर खिलजी की ओर देखा और खिलजी मुँह फेरकर वार्ड की दीवार के सहारे से लगकर रोने लगा। रेशमाँ के विदा होते समय भी वह उसी प्रकार रोया था। बेगमाँ के जाते समय भी उसी प्रकार, उसी दुख के वशीभूत होकर रोता था, लेकिन खिलजी के लिए न रेशमाँ रुकी, न बेगमाँ न जानकी; और अब कितने वर्षों के बाद नूराँ आयी थी और उसका हृदय उसी प्रकार धड़कने लगा था, और यह धड़कन दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली जाती थी। शुरू-शुरू में तो नूराँ की हालत बुरी थी, उसका बचना कठिन था, लेकिन खिलजी की अनथक कोशिशों से घाव भरते चले गये, पीप कम होती गयी, दुर्गन्ध दूर होती गयी, सूरज गायब होती गयी, नूराँ की आँखों में चमक और उसके सफेद चेहरे पर स्वास्थ्य की लालिमा आती गयी; और जिस दिन खिलजी ने उसकी बाँहों की पट्टी उतारी तो नूराँ विनय-भाव के वशीभूत हो उसकी छाती से लिपटकर रोने लगी, और जब उसके पाँव की पट्टी उतारी तो उसने अपने हाथ और पाँव में मेंहदी रचाई और आँखों में काजल लगाया और बालों की लटें सँवारीं तो खिलजी का हृदय प्रसन्नता से चौकड़ियाँ भरने लगा। नूराँ खिलजी को दिल दे बैठी थी। उसने खिलजी से शादी का वायदा कर लिया था। नम्बरदार का बेटा और पटवारी का बेटा दोनों बारी-बारी कई बार उसे देखने के लिए, उससे क्षमा माँगने के लिए, उससे शादी का वचन लेने के लिए हस्पताल आये थे, और नूराँ उन्हें

देखकर हर बार घबराकर काँपने लगती, मुड़-मुड़कर देखने लगती और उस समय तक उसे चैन न पड़ता जब तक कि वे लोग चले न जाते; और खिलजी उसके हाथ को अपने हाथ में न ले लेता। और जब वह बिलकुल अच्छी हो गयी तो सारा गाँव, उसका अपना गाँव उसे देखने के लिए उमड़ पड़ा। गाँव की छोरी अच्छी हो गयी थी—डाक्टर साहब और कम्पौंडर साहब की कृपा से; और नूराँ के माँ-बाप बिछे जाते थे; और आज तो नम्बरदास भी आया था और पटवारी भी, और वे दोनों मूर्ख लड़के भी, जो अब नूराँ को देख-देखकर अपने किये पर पछता रहे थे। और फिर नूराँ ने अपनी माँ का सहारा लिया और काजल में तैरती हुई डबडबाई आँखों से खिलजी की ओर देखा और चुपचाप अपने गाँव चली गई। सारा गाँव उसे लेने आया था, और उसके कदमों के पीछे-पीछे नम्बरदार के बेटे और पटवारी के बेटे के कदम थे और ये कदम और दूसरे कदम और दूसरे कदम और सैकड़ों कदम जो नूराँ के साथ चल रहे थे, खिलजी की छाती की घाटी पर से गुजरते गये और पीछे एक धुँधला, धूल से अटा हुआ मार्ग छोड़ गये।

और कोई वार्ड की दीवार के साथ लगकर सिसकियाँ लेने लगा।

बड़ा सुन्दर रोमांच-भरा जीवन था। खिलजी बत्तीस रुपया वेतन पाता था, पन्द्रह-बीस रुपया ऊपर से कमा लेता था। खिलजी जो जवान था, जो प्रेम करता था, जो एक छोटे-से बंगले में रहता था, जो अच्छे लेखकों की कहानियाँ पढ़ता और प्रेम में रोता था। कैसा दिलचस्प, रोमांच और प्रसन्नता-भरा जीवन था खिलजी का लेकिन कालू भंगी के सम्बन्ध में मैं क्या कह सकता हूँ, सिवाय इसके कि—

(1) कालू भंगी ने बेगमाँ की लहू और पीप से भरी हुई पट्टियाँ धोईं।
(2) कालू भंगी ने बेगमाँ का मल-मूत्र साफ किया।
(3) कालू भंगी ने रेशमाँ की गन्दी पट्टियाँ साफ कीं।
(4) कालू भंगी रेशमां के बेटे को मक्की के भुट्टे खिलाता था।

(5) कालू भंगी ने जानकी की गन्दी पट्टियाँ धोईं और प्रतिदिन उसके कमरे में फिनायल छिड़कता रहा और शाम से पहले वार्ड की खिड़की बन्द करता रहा और अँगीठी में लकड़ियाँ जलाता रहा, ताकि जानकी को शीत न लगे।

(6) कालू भंगी नूराँ का पाखाना उठाता रहा—तीस मास दस दिन तक।

कालू भंगी ने रेशमाँ को जाते हुए देखा, उसने जानकी को जाते हुए देखा, उसने नूराँ को जाते हुए देखा, लेकिन वह कभी दीवार से लगकर नहीं रोया। वह पहले तो कुछ क्षणों के लिए हैरान हो जाता, फिर उसी आश्चर्य से अपना सिर खुजाने लगता और जब कोई बात उसकी समझ में न आती तो वह हस्पताल के नीचे खेतों में चला जाता और गाय से अपनी चिन्दिया चटवाने लगता। परन्तु इसका वर्णन तो मैं पहले कर चुका हूँ, फिर और क्या लिखूँ तुम्हारे बारे में कालू भंगी? सब कुछ तो कह दिया जो कुछ कहना था, जो कुछ तुम रहे हो। तुम्हारा वेतन बत्तीस रुपया होता, तुम मिडिल पास या फेल होते, तुम्हें विरासत में कुछ सभ्यता, संस्कृति, कुछ थोड़ा-सा मानव-उल्लास और उस उल्लास का शिखर मिला होता तो मैं तुम्हारे सम्बन्ध में कोई कहानी लिखता। अब तुम्हारे आठ रुपये में मैं क्या कहानी लिखूँ! हर बार उन आठ रुपयों को उलट-फेर कर देता हूँ—चार रुपये का आटा, एक रुपये का नमक, एक रुपये का तम्बाकू, आठ आने की चाय, चार आने का गुड़, चार आने का मसाला—सात रुपये, और एक रुपया बनिये का—आठ रुपये हो गये। कालू भंगी, तुम्हारी कहानी कैसे बनेगी? तुम्हारी कहानी मुझसे न लिखी जाएगी। चले जाओ, देखो मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ता हूँ।

लेकिन यह मनहूस अभी तक यहीं खड़ा है। अपने उखड़े पीले-पीले गन्दे दाँत निकाले, अपनी फूटी हँसी हँस रहा है।

तू ऐसे नहीं जाएगा! अच्छा भाई, अब मैं फिर अपनी स्मृतियों की राख कुरेदता हूँ। शायद तेरे लिए अब मुझे बत्तीस रुपयों से नीचे

उतरना पड़ेगा और बखतियार चपरासी का सहारा लेना पड़ेगा। बखतियार चपरासी को पन्द्रह रुपये वेतन मिलता है, और जब कभी वह डॉक्टर या कम्पौंडर या वैक्सीनेटर के साथ दौरे पर जाता है तो उसे डबल भत्ता और सफर-खर्च भी मिलता है। फिर गाँव में उसकी अपनी जमीन भी है, और एक छोटा-सा मकान भी, जिसके तीन ओर चीड़ के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष हैं और एक सुन्दर-सा बगीचा है, जो उसकी पत्नी ने लगाया है। उसमें उसने कड़म का साग बोया है, और पालक, और मूलियाँ, और शबनम, और हरी मिरचें, और बड़ी इल्लें, और कद्दू—जो गरमियों की धूप में सुखाए जाते हैं और सरदियों में जब बर्फ पड़ती है और हरियाली मर जाती है, तो खाये जाते हैं। बखतियार की पत्नी यह सब कुछ जानती है। बखतियार के तीन बच्चे हैं, उसकी बूढ़ी माँ है जो सदैव बहू से झगड़ा करती रहती है। एक बार बखतियार की माँ अपनी बहू से झगड़ा करके घर चली गयी थी। उस दिन आकाश पर गहरे बादल छाये हुए थे। मारे पाले के दाँत बज रहे थे। घर से बखतियार का बड़ा लड़का अम्मां के साथ दादी के चले जाने की सूचना लेकर दौड़ता-दौड़ता हस्पताल आया था। बखतियार उसी समय अपनी माँ को वापस लाने के लिए कालू भंगी को साथ लेकर चल दिया था। वे दिन-भर उसे जंगल में ढूँढ़ते रहे—वह और कालू भंगी और बखतियार की पत्नी; बहू अपने किये पर पछता रही थी। अपनी सास को ऊँची आवाजें देने के साथ-साथ रोती जाती थी। आकाश पर बादल छाए हुए थे और सरदी से हाथ-पाँव सुन्न हुए जाते थे और पाँव तले चीड़ के सूखे झूमर फिसले जाते थे। फिर वर्षा शुरू हो गयी, फिर बर्फ पड़ने लगी और फिर चारों ओर गहरी चुप्पी छा गयी और जैसे एक गहरी मृत्यु अपने दरवाज़े खोल दिए हों, और बर्फ की परियों को पंक्तियों में बाहर धरती पर भेज दिया हो। बर्फ के गोले धरती पर गिरते गये; मौन, शान्त सफेद मखमल घाटियों, वादियों और चोटियों पर फैल गयी।

"अम्मां-ं-ं-ं!" बखतियार की पत्नी ज़ोर से चिल्लाई।

"अम्मा!" बखतियार चिल्लाया।

"अम्मा!" कालू भंगी ने आवाज दी।

जंगल गूँजकर मौन हो गया।

फिर कालू भंगी ने कहा, "मेरा खयाल है वह नक्कर गयी होगी, तुम्हारे मामूं के पास।"

नक्कर के दो कोस इधर उन्हें बखतियार की अम्मां मिली। बर्फ गिर रही थी और वह चली जा रही थी; गिरती, पड़ती, लुढ़कती, थमती, हाँफती, काँपती आगे बढ़ती चली जा रही थी, और जब बखतियार ने उसे पकड़ा तो एक क्षण के लिए उसने प्रतिरोध किया, फिर वह उसकी बाँह में गिरकर मूर्छित हो गयी और बखतियार की पत्नी ने उसे थाम लिया और रास्ता-भर वे उसे बारी-बारी से उठाते चले आये—बखतियार और कालू भंगी। और जब लोग वापस घर पहुँचे तो बिलकुल अँधेरा हो चुका था और उन्हें वापस आते देखकर बच्चे रोने लगे और कालू भंगी एक ओर होकर खड़ा हो गया और अपना सिर खुजाने लगा, और इधर-उधर देखने लगा। फिर उसने धीरे-से दरवाज़ा खोला और वहाँ से चला आया। हाँ, बखतियार के जीवन में भी कहानियाँ हैं, छोटी-छोटी सुन्दर कहानियाँ लेकिन कालू भंगी! मैं तुम्हारे बारे में क्या लिख सकता हूँ? मैं हस्पताल के प्रत्येक व्यक्ति के बारे में कुछ-न-कुछ अवश्य लिख सकता हूँ, लेकिन तुम्हारे सम्बन्ध में इतना कुछ कुरेदने के बाद भी समझ में नहीं आता कि तुम्हारा क्या किया जाए, भगवान के लिए अब तो चले जाओ, बहुत सता लिया तुमने!

लेकिन मुझे मालूम है, यह जाएगा नहीं। इसी प्रकार मेरे मस्तिष्क पर सवार रहेगा और मेरी कहानियों में अपनी गन्दी झाड़ू लिए खड़ा रहेगा। अब मैं समझता हूँ तू क्या चाहता है। तू वह कहानी सुनना चाहता है, जो अभी हुई नहीं, लेकिन हो सकती थी। मैं तेरे पाँव से आरम्भ करता हूँ। सुन? तू चाहता है न, कि कोई तेरे गन्दे खुरदरे पाँव धो डाले, धो-धोकर उनसे गन्दगी दूर करे। उनकी

बिवाइयों पर मरहम लगाये। तू चाहता है तेरे घुटनों की उभरी हुई हड्डियाँ मांस में छिप जाएँ, तेरी जाँघों में कठोरता और बल आ जाए। तेरे पेट की मुरझाई हुई सलवटें गायब हो जाएँ, तेरी कमज़ोर छाती के धूल से अटे हुए बाल गायब हो जाएँ। तू चाहता है, कोई तेरे होंठों में रस डाल दे, उन्हें वाक्-शक्ति प्रदान कर दे। तेरी आँखों में चमक डाल दे, तेरे गालों में लहू भर दे, तेरी चिन्दिया को घने बालों में ढक दे, तुझे साफ-सुथरे वस्त्र दे दे, तेरे इर्द-गिर्द एक छोटी-सी चारदीवारी खड़ी कर दे—सुन्दर! स्वच्छ!! उनमें तेरी पत्नी राज करे, तेरे बच्चे कहकहे लगाते फिरें। जो कुछ तू चाहता है, वह मैं नहीं कर सकता। मैं तेरे टूटे-फूटे दाँतों की हँसी पहचानता हूँ। जब तू गाय से अपना सिर चटवाता है तो मुझे मालूम होता है कि तू अपनी कल्पना में अपनी पत्नी को देखता है जो तेरे बालों में अपनी उँगलियाँ फेरकर तेरा सिर सहलाती है, यहाँ तक कि तेरी आँखें बन्द हो जाती हैं, तेरा सिर झुक जाता है और तू उसकी कृपालु गोद में सो जाता है; और जब तू मेरे लिए आग पर धीरे-धीरे भुट्टा सेंकता है और मुझे जिस प्रेम और स्नेह से वह भुट्टा खिलाता है, तू अपने मस्तिष्क की गहराई में उस नन्हे बच्चे को देख रहा होता है जो तेरा बेटा नहीं है, जो अभी नहीं आया, जो तेरे जीवन में कभी नहीं आएगा, लेकिन जिससे तूने एक बाप की तरह प्रेम किया है। तूने उसे गोदियों में खिलाया है। उसका मुँह चूमा है। उसे अपने कन्धे पर बिठाकर संसार-भर में घुमाया है। देख लो, यह मेरा बेटा है, यह है मेरा! और जब यह सब कुछ तुझे नहीं मिला तो तू सबसे अलग होकर खड़ा हो गया और आश्चर्य से अपना सिर खुजलाने लगा और तेरी उँगलियाँ आप ही आप गिनने लगीं—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ रुपये! मैं तेरी वह कहानी जानता हूँ जो हो सकती थी, लेकिन हो न सकी, क्योंकि मैं कहानीकार हूँ। मैं एक नयी कहानी गढ़ सकता हूँ, एक नया मनुष्य नहीं गढ़ सकता। उसके लिए मैं अकेला काफ़ी नहीं हूँ, इसके लिए कहानीकार और उसका पढ़नेवाला और डॉक्टर और

कम्पौंडर और बखतियार और गाँव के पटवारी और नम्बरदार और दुकानदार और शासक और राजनीतिज्ञ और मजदूर और खेतों में काम करनेवाले किसान, प्रत्येक व्यक्ति की, लाखों-करोड़ों-अरबों व्यक्तियों की इकट्ठी सहायता चाहिए। मैं अकेला विवश हूँ, कुछ नहीं कर पाऊँगा। जब तक हम सब मिलकर एक-दूसरे की सहायता न करेंगे, यह काम न होगा, और तू इसी प्रकार अपनी झाड़ू लिए मेरे मस्तिष्क के दरवाजे पर खड़ा रहेगा और मैं कोई महान् कहानी न लिख सकूँगा जिसमें मानव-आत्मा का पूर्ण उल्लास झलक उठे, और कोई मेमार महान भवन न बना सकेगा जिसमें हमारी जाति की महानता अपने शिखरों को छू ले, और कोई ऐसा गीत न गा सकेगा जिसकी गहराइयों में विश्व का सारा रहस्य छलक-छलक जाए!

यह भरपूर जीवन सम्भव नहीं, जब तक तू झाड़ू लिए यहाँ खड़ा है!

अच्छा है, खड़ा रह। फिर शायद कभी वह दिन आ जाए कि कोई तुझसे तेरी छुड़ा दे, और तेरे हाथों को नरमी से थामकर इन्द्रधनुष के उस पार ले जाए।

पुंछ की क्लियोपैट्र



जैसे किसी छोटे-से कमरे में कोई हीरा पड़ा हो तो सारा कमरा जगमगाने लगता है, उसी तरह किसी छोटे-से शहर में कोई बहुत ही सुन्दर औरत पैदा हो जाए तो सारा शहर उसके सौन्दर्य से जगमगाने लगता है, गलियों, कूचों, बाज़ारों, दफ़्तरों में उसकी चर्चा होने लगती है। अगर वह अपने मुहल्ले से गुज़रकर किसकी दूसरे मुहल्ले में जाती है तो सारे शहर में उसकी ख़बर फैल जाती है। अगर वह कभी किसी बाज़ार से गुज़रती है, तो फिर घंटों उस छोटे-से शहर के बाज़ार में कोई काम नहीं हो सकता। किस तरह वह चल रही थी? कौन-से कपड़े उसने पहन रखे थे? कौन उसके साथ था? किस तरफ़ उसकी निगाह उठी थी? ये सब बातें कोई स्कैण्डल फैलाने की गर्ज़ से नहीं की जाती हैं, उन बातों में किसी किस्म की बदनीयती या कड़वापन भी नहीं होता है, बल्कि छोटे-से. शहर के लोगों में उस अत्यन्त सुन्दर स्त्री के लिए एक अजीब तरह का प्यार, एक अजीब तरह का अपनापन पैदा हो जाता है। अपनेपन के साथ यह गर्व भी होता है कि हमारे छोटे-से शहर ने

इसे पैदा किया है। वह औरत अपने शहर का गौरव और आभूषण समझी जाने लगती है। ज़रा-सी भूल पर क्रुद्ध हो जानेवाले बुज़ुर्ग और शुद्ध आचरणवाले दढ़ियल इस गर्व से उस स्त्री की मुहब्बतों और बेवफाइयों का ज़िक्र करते हैं, जैसे वे कोई ऐतिहासिक कारनामे हों। मालूम नहीं ऐसा क्यों होता है, मगर होता जरूर है कि बहुधा ऐसी औरत सभ्यता की गरिमा से ऊँची समझी जाने लगती है। शायद वह खुद एक सभ्य नियम बन जाती है जिसके नियम प्रचलित सिद्धान्तों से भिन्न होते हैं; शायद ऐसी औरत अपने-आप में स्वयं एक मज़हब या धर्म होती है, एक छोटी-सी जीवन-व्यवस्था, अपने-आपमें पूरी और स्वतन्त्र! ऐसी औरत को हर तरह की छूट दे दी जाती है, मगर दूसरी औरत की मामूली से मामूली सामान्य भूल को भी मुआफ़ नहीं किया जाता, कुछ अजीब हिसाब है। ऐसी स्त्री को पुरुष, समाज, इतिहास सब क्षमा कर देते हैं। याद कीजिए, हेलन, क्लियोपैट्रा और वसुन्धरा!...हेलन और क्लियोपैट्रा को तो आप सब जानते हैं, मगर वसुन्धरा का नाम आपने नहीं सुना होगा।

वसुन्धरा पुंछ की रहनेवाली थी।

शायद बचपन में वह मेरे साथ खेली थी। मुझे कुछ ठीक तरह से वह ज़माना याद नहीं है। उसका घर नानबाइयों के बाज़ार के पीछे था। वहाँ पर एक शिवाला था। उसके सामने बहुत-सी ज़मीन खाली पड़ी थी। फिर हमारे दूर-पार के एक रिश्तेदार का घर था, जो शहर का सबसे अमीर आदमी था। कभी-कभी मैं उसके घर जाया करता था, कभी-कभी वसुन्धरा भी वहाँ खेलने के लिए आ जाती थी। मुझे उसके बचपन की सूरत ठीक तरह से याद नहीं है, क्योंकि बचपन में वह एक साधारण हँसमुख लड़की रही होगी, जैसी दूसरी साधारण सुन्दर लड़कियाँ होती हैं। कौन याद रखता है, फिर यह भी बहुधा देखा गया है कि बचपन में जो लड़कियाँ अत्यन्त सुन्दर दिखाई देती हैं, जवानी की सीमा में आते ही उनका हुलिया अजीब तरीके से बदल जाता है और वे उतनी खूबसूरत और हसीन मालूम नहीं होतीं।

अक्सर यह भी देखा गया है कि बचपन में जिन लड़कियों की शक्ल व सूरत मामूली होती है बड़े होकर भी वे मामूली शक्ल व सूरत की रहती हैं, मगर कभी-कभार इन्हीं मामूली शक्ल व सूरत की लड़कियों में कोई एक ऐसी लड़की पैदा हो जाती है जिसकी सुन्दरता जवानी की हदों को छूते-छूते ही आँखों में चकाचौंध करने लगती है। वसुन्धरा एक ऐसी ही लड़की थी। बचपन में मैंने कई बार देखा था, कई बार साथ खेला भी था, कभी ख़याल ही नहीं किया। कई वर्ष गुजर गये, वह चौदह वर्ष की हो गयी, यह सुना कि वसुन्धरा बहुत खूबसूरत निकल रही है, फिर भी कुछ ख़याल नहीं किया, खूबसूरत लड़कियोंवाले शहर में एक और लड़की का खूबसूरत निकल जाना कोई अचम्भे की बात नहीं। फिर जब उसके हुस्न के चर्चे बढ़ने लगे, तो उसके बाप मदनसिंह ने जो एक सुनार था, जल्दी से उसका ब्याह अपनी बिरादरी के एक लड़के गोपालसिंह से कर दिया। गोपालसिंह भी एक सुनार था और पुंछ के बाजार ही में उसकी दुकान थी और वह खुद भी शक्ल व सूरत का बहुत अच्छा था और घर का खाता-पीता था, मगर कोई खास बात न थी, बस शादी हो गयी। कहीं कोई हलचल पैदा नहीं हुई। लोग उस शादी को दूसरे दिन ही भूल गये।

शादी के बाद वसुन्धरा का रंग-रूप एकाएक ऐसा निखरा, ऐसा निखरा कि नगरों में चारों तरफ़ उसके चर्चे होने लगे, उसके सुनहरी बालों, बड़ी-बड़ी मस्त आँखों और पिघले हुए सोने की-सी सुनहरी रंगत का बार-बार ज़िक्र होने लगा। उसके कद की, उसकी चाल की, उसके कपड़ों की तारीफ होने लगी, उसके मुहल्ले के सौ-सौ फेरे किये जाने लगे, लोग घंटों वसुन्धरा की एक झलक देखने के लिए बेताब रहने लगे। जिधर से वह गुजर जाती, जिस घर में वह जाती, जिधर से उसे गुज़रना होता, यार लोग घंटों पहले उस जगह के चक्कर लगाने लगते। शादी के बाद छः माह में उसके सौन्दर्य का शोहरा बच्चे-बच्चे की ज़बान पर था।

होते-होते वसुन्धरा की सुन्दरता का शोहरा दरबार तक पहुँचा,

राजमहलों तक पहुँचा, इत्तिफाक से एक स्टेट सेक्रेटरी का घर वसुन्धरा के माँ-बाप के घर के बिलकुल सामने स्थित था। वसुन्धरा के माँ-बाप का घर एकमंजिला था और मामूली-सा घर था। स्टेट सेक्रेटरी का घर वसुन्धरा के घर से बहुत बेहतर था, मगर था वह भी एकमंजिला। इत्तिफाक ऐसा हुआ कि जब भी वसुन्धरा अपने माँ-बाप के घर आती और चूँकि दोनों घर अर्थात् मैके के और ससुराल के एक ही शहर में थे, इसलिए वसुन्धरा दिन में दो-एक चक्कर तो अपने मैके के लगाती थी...तो उसके आगमन के कुछ देर बाद ही कुँवरजी शाही गारद के सवारों की अर्दल में घोड़ा दौड़ाते हुए स्टेट सेक्रेटरी से मिलने के लिए चले आते। केवल मुलाकात करने के लिए या कोई रियायती मशविरा करने के लिए, यह तो हमें मालूम नहीं कि क्या होता था, हाँ हौले-हौले उस स्टेट सेक्रेटरी का घर दोमंज़िला होता गया और वसुन्धरा के माँ-बाप का घर भी एकमंज़िला से दोमंज़िला हो गया। स्टेट सेक्रेटरी के घर का सारा साज़ व सामान भी बदल गया। वसुन्धरा के घर की दूसरी मंजिल पर टीन की छत पड़ गयी थी जो पुँछ में खुशहाली की आबरू समझी जाती है। वसुन्धरा थी एक मामूली सुनार की लड़की, एक साधारण सुनार की स्त्री, मगर कहनेवाले यह कहते हैं कि वह परियों की रानी मालूम होती थी। एक बार हम लड़कों ने उसे भतिया के जंगल से वापस आते हुए देखा था, जहाँ वह कुँवरजी के साथ शिकार खेलने गयी थी। उसके सुनहरे बाल उसके कन्धों से उठ-उठकर हवा में लहरा रहे थे और उसका खुशियों से गुलनार चेहरा डूबते सूर्य की लाली से दमक रहा था। वह राजकुमार के साथ-साथ काले रंग के एक बैलर घोड़े पर सवार, केसरिया रंग की बिरजिस और खुले कालरों का रेशमी ब्लाउज़ पहने कोई पाकिस्तानी शहजादी मालूम होती थी। यह तो वह वसुन्धरा ही न थी जो बचपन में मेरे साथ खेलती थी। उसकी निगाह आकाश पर थीं और उसके घोड़े के सुम भी जमीन से लगते मालूम नहीं होते थे।

अजब हुस्न और इश्क़ के दिन थे, जैसे सारा शहर इस इश्किया

दास्तान में उलझा हो...दिन किसी उपन्यास के पृष्ठों की तरह दिलचस्प और रोमांटिक थे, कोई और बात ही न होती थी। फिर सुना कि कुँवरजी को एकबारगी इंग्लैंड भेज दिया गया है, उच्च शिक्षा हासिल करने के लिए। हर एक का दिल धक्-से रह गया, प्रत्येक व्यक्ति ने वसुन्धरा के दिल की पीड़ा और दुःख को महसूस किया। इश्क़ की सहानुभूति और मजबूरी से हर शख्स चूर-चूर था, हर शख्स ने वसुन्धरा की आँखों में आँसू देखे। मुमकिन है वहाँ कोई आँसू न था, मगर हम सबने उसकी आँखों में आँसू देखे। और एक सुन्दर औरत के विरह की आग को अपने दिल में महसूस किया।

चन्द माह बाद सुना कि वसुन्धरा एक बहुत बड़े अफ़सर की कोठी के आलीशान बाग में टहलती देखी गयी, वज़ीर मानिकराय एक सुन्दर डोगरा राजपूत था और जम्मू के एक ऊँचे खानदान का व्यक्ति था और हाकिमों के तबके से तअल्लुक रखता था। मन्त्री होने के नाते उसके हाथ में ताकत भी थी क्योंकि राजा साहब कुछ महीनों से बीमार थे और कुँवरजी लन्दन में थे, इसलिए रियासत की पूरी ताक़त खिंचकर मन्त्री के हाथ में चली आयी थी। चाँदनी रातों में फव्वारा बाग की रविशों पर लचकते हुए हुए दो रोया फूलों की क्यारियों में टहलते हुए वसुन्धरा और मानिकराय को लोगों ने छुप-छुपकर देखा और फिर प्रधान मन्त्री और वसुन्धरा की मुहब्बत की दास्तानें दुहराई जाने लगीं, जैसे वसुन्धरा ने कोई बेवफाई न की हो, बल्कि कोई दूसरा इलाका फतह कर लिया हो। उसकी फतह के शादियाने हर दिल में थे। सारा शहर खुशियाँ मना रहा था। अब दरबार वसुन्धरा के मायके में लगता था, रियासत के कितने ही फैसले जो उस आला अफसर को खुद ही करने चाहिए वे वसुन्धरा खुद करती थी। हाकिमों के तबादले और तरक्कियाँ और पदच्युति और इनाम व अकराम और क्या कुछ...सारे शहर में वसुन्धरा का बोलबाला था।

मैं उन दिनों मैट्रिक पास करके आगे पढ़ने के लिए लाहौर गया था। और फार्मन क्रिश्चियन कालेज लाहौर में फर्स्ट इयर क्लास में

दाखिल हो गया था। दो साल बाद जब पुंछ आया, तो नक्शा ही बदला हुआ पाया। मन्त्री मानिकराय की जगह नायब रेजीडेंट बहादुर ने ले ली थी। पुंछ में रेज़ीडेंसी की एक शाखा थी, यहाँ पर एक नायब रेज़ीडेंट रहता था, तमाम महत्वपूर्ण विषयों में वह राजा साहब को मशविरे देता था और बहुधा उसके मशविरों पर अमल होता था। जब वसुन्धरा ने उस अंग्रेज़ रेज़ीडेंट का दिल जीत लिया और जब रेजीडेंट बहादुर साहब का घोड़ा वसुन्धरा के मायके के गिर्द, जो अब तीन मंज़िला हो चुका था, देखा गया तो आश्चर्य की एक लहर सारे शहर में दौड़ गयी। ऐसा लगा, जैसे पूरी बरतानवी सल्तनत का सर एक हिन्दोस्तानी लड़की के कदमों में झुक गया। इससे पहले ऐसी घटना बड़े-बुजुर्गों की स्मृति में न थी। यह तो पहली बार ऐसा हुआ था कि रेज़ीडेंट बहादुर खुद चलके शहर के अन्दर किसी हिन्दोस्तानी के घर गये थे, वर्ना तो खुद राजा साहब को जब कोई मशविरा लेना होता तो वे खुद रेज़ीडेंसी में जाते थे।

दो साल बाद जब मैं गर्मियों की छुट्टियों में पुंछ पहुँचा तो वसुन्धरा के हुस्न व जमाल का शोहरा उन्नति के शिखर पर था। अंग्रेज़ रेज़ीडेंट से इश्क़ करके वसुन्धरा ने गोया अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की सीमाओं को छू लिया था। मैं उसे देखने के लिए बहुत बेताब था। इस दौर में मैंने 'मादाम बावेरी' पढ़ ली थी और बहुत-से फ्रांसीसी उपन्यास। और मैं अब उन मशहूर फ्रांसीसी सुन्दरियों के नामों से भी परिचित हो चुका था। जिनकी ड्योढ़ियों पर फ्रांसीसी कैबिनेट के बड़े-बड़े वज़ीर सिर झुकाते थे। हमारे शहर की भी एक औरत थी, ऐसी ही, मुझे उसे देखना चाहिए, करीब से...

मगर कैसे देखूँ?...मैंने अपने दोस्त अमरजीत सिंह से इसका जिक्र किया, जो खोड़ीनाड़ में रहता था, जिसके घर में चारों ओर घने पेड़ोंवाला एक बाग था और जिसके पिछवाड़े में एक पहाड़ी नाला शोर मचाता हुआ बहता था और जो दूर-पार से शायद वसुन्धरा का रिश्तेदार भी होता था। अमरजीत ने थोड़े टाल-मटोल के बाद मेरी

बात मान ली और एक रोज़ किसी दावत में उसने वसुन्धरा को और उसके मायकेवालों को अपने घर खाने पर आमन्त्रित किया और उस दावत में मुझे भी खाने के लिए बुलाया। मुझे याद नहीं कि मैंने उस दावत में वसुन्धरा से कोई बात की हो। एक तो मैं उम्र में उससे चार-पाँच साल छोटा था, दूसरे अभी बिलकुल कच्चा और शर्मीला था, तीसेर् शायद सुन्दरता के रौब ने ज़बान बन्द कर दी थी।

खाने के बाद हम अमरजीत के बाग में टहलने के लिए निकले। वे गर्मियों के दिन थे, बाग में सफेद और पीली चमेली फूली हुई थी। पेड़ों पर खूबानियाँ गदराई हुई थीं और अनार की कलियों से सारा चमन याकूतरंग था। टहलते-टहलते वसुन्धरा ने खूबानी के चन्द पेड़ों के नीचे खड़े होकर ऊपर देखा और कहने लगी :

''खूबानियाँ उम्दा मालूम होती हैं।''

दूसरे लमहे एक पेड़ पर अमरजीत चढ़ गया, दूसरे पर मैं। चन्द मिनटों के बाद हम दोनों ने बारी-बारी वसुन्धरा के सामने घास के एक तख्ते पर सैकड़ों खूबानियाँ ढेर कर दीं।

थोड़ी देर में अमरजीत का एक चचा जो उसके घर में रहता था किसी और दरख्त से नीचे उतरा और वसुन्धरा के सामने खूबानियों का बहुतेरा ढेर लगाकर झेंपता हुआ वापस चला गया। वह लगभग साठ बरस का रहा होगा। उसके बाल सफेद थे और जब वह चला गया तो वसुन्धरा बड़े नटखट लहजे में बड़े ज़ोर से हँसने लगी।

फिर एकदम से उसने अपनी उँगली मेरे गाल पर रख दी और बोली :

''अरे किसने! बचपन में तेरे गाल पर यहाँ एक गड्ढा पड़ता था, वह क्या हुआ?''

मैं इस कदर झेंपा कि चेहरा कानों तक सुर्ख हो गया। जल्दी से वहाँ से भाग लिया, मैं एक शब्द भी तो उससे नहीं कह पाया, बस उठकर वहाँ से भाग गया। दूर तक उसकी हँसी के चमेली के फूल मेरे कानों पर गिरते रहे। उसके बाद मैंने वसुन्धरा से मिलने की कभी

कोशिश नहीं की। हाँ, उसकी वह उँगली मैंने अभी तक सँभाल के रखी है, दिल के किसी गड्ढे में, क्योंकि अब तो मेरे गालों में गड्ढा नहीं पड़ता है, जो कभी बचपन में था और मैं बहुत बदल गया हूँ, मगर दिल के कई गड्ढे हैं। वह उँगली शहद की किसी कलम की तरह अब भी रातों के अँधेरे में मेरे गाल को छूती है और नटखट स्वर में मुझसे पूछती है, 'किसने! तेरे गाल का वह गड्ढा कहाँ गया?'

वसुन्धरा से किसी को शिकायत नहीं थी, यह कि वह बेवफ़ा थी, यह कि उसेन कई बार मुहब्बत की थी, यह कि उसने बहुत-सी मुहब्बतों को ठुकरा दिया था, यह कि उसने सिर्फ़ ऊँची जगहों पर इश्क़ किया था। किसी को उससे शिकायत नहीं थी, हम सब उसके शुक्रगुजार थे कि वह हममें पैदा हुई। ऐसा लगता था, जैसे हममें से हर एक को उससे अलग-अलग इश्क़ है। कुछ तो उसके इश्क़ की दास्तानें सच्ची भी थीं, कुछ गढ़ ली जाती थीं। हौले-हौले चन्द सालों में वसुन्धरा हमारे शहर का एक लेजेंड बन गई।

मगर उसके शौहर को उससे बहुत शिकायत थी। वह खुद बेहद सजीला नौजवान था, इसलिए उसका गिला जायज़ था कि वह सिर्फ़ उससे इश्क़ क्यों नहीं करती है, जबकि वह ख़ासा खुशहाल भी है, वह बेवफ़ा और हरजाई क्यों है? लोग क्यों उसके हुस्न के गीत गाते हैं, उसके फ़िराक़ में आहें भरते हैं, उसे देखकर ठठ के ठठ बाँधकर खड़े हो जाते हैं। हौले-हौले उसका अपना कोई व्यक्तित्व न रहा था, वह अब केवल वसुन्धरा का पति था, हर समय उसके दिल में एक अजीब व गरीब लड़ाई चलती रहती। वह वसुन्धरा से अत्यन्त प्रेम करता था और वसुन्धरा भी उससे करती थी। वह कहीं भी जाती, आख़िर को तो उसके पास आती थी। वही तो उसका पति था और कोई दूसरा न हो सकता था, मगर कभी-कभी उसको इतना गुस्सा आता कि उसका दिल वसुन्धरा को पीटने के लिए चाहने लगता; मगर वसुन्धरा को देखते ही उसका दिल पिघल जाता और वह उसे मारने की बजाय उसके कदमों में झुक जाता। मगर वसुन्धरा के

कदमों में झुकते हुए भी दुनियावालों के लिए उसका क्रोध बढ़ जाता, वह सारी जिम्मेदारी बाहर की दुनिया पर डाल देता, जो वसुन्धरा के विचित्र सौन्दर्य से प्रभावित होकर इस जोड़े के गृहस्थ जीवन को बिगाड़ती है और इन दोनों को चैन से नहीं रहने देती।

जब इस तरह वसुन्धरा के तीन-चार किस्से हो गये और जब रेज़ीडेंट बहादुरवाला रोमांस ज़ोर पकड़ने लगा, तो वसुन्धरा के पति ने शहर छोड़ने की ठान ली...वह पुंछ छोड़ देगा और हसीन बीवी को लेकर कहीं और चला जाएगा, किसी दूर-दराज के इलाके में जहाँ इस शहर के हुस्न व इश्क़ की चर्चा की छाया भी उन तक न फटके।

उसने पुंछ छोड़कर जाने की ठान ली और हौले-हौले उसने वसुन्धरा को भी इस बात के लिए राजी कर लिया। पहले तो वसुन्धरा पुंछ छोड़ने के लिए कदापि तैयार न थी, लेकिन जब गोपाल ने उसे छोड़ देने की धमकी दी, तो आखिर औरत थी, राज़ी हो गयी और अपने शौहर के साथ राजौरी जाने पर तैयार हो गयी।

चुपके-चुपके वसुन्धरा के पति ने जाने की सारी तैयारी कर ली, उसने किसी को नहीं बताया कि वह पुंछ छोड़ रहा है, वसुन्धरा को उसने खबरदार कर दिया था कि इस बात से किसी को आगाह न करे।

मगर न जाने किस तरह से यह खबर सारे शहर में फैल गयी, जगह-जगह नाकों और नुक्कड़ों पर और बाज़ारों में और गली-कूचों में और दफ़्तरों में यह ज़िक्र होने लगा कि गोपाल वसुन्धरा को लेकर जा रहा है, हमेशा के लिए पुंछ छोड़ रहा है, और कौन उसे मना कर सकता है? गोपाल वसुन्धरा का पति है, वसुन्धरा अपने पति के साथ जा रही है।

सारे शहर पर जैसे बिजली-सी गिर पड़ी, सब सन्न थे, मगर मुँह से कुछ कह नहीं सकते थे, एक-दूसरे से कानाफूसी में बातचीत करते थे। सबके चेहरे सहमे हुए थे, जैसे शहर पर कोई बहुत बड़ी आफत आनेवाली हो।

जाने का वक्त हो गया। वसुन्धरा के पति ने सुबह-सवेरे सारा

सामान छः खच्चरों पर लादकर उन्हें पहले से रवाना कर दिया, निगाली साहब की तरफ़...जाने से पहले वे दोनों निगाली साहब के गुरुद्वारे में हाज़िर होके अपने-अपने पापों से मुक्त होंगे और फिर एक नयी ज़िन्दगी शुरू करने के लिए राजौरी चले जाएँगे। निगाली साहब का गुरुद्वारा शहर से चार मील पर एक रमणीक पहाड़ी मुकाम पर था। रास्ता कठिन था, एक जगह पर एक खतरनाक नाले पर लकड़ी का एक पुल आता था; उसे पार करने के बाद एक भयानक उतराई उतरकर पुंछ के दरिया के एक हिस्से को पैदल चलके पार करना पड़ता था, क्योंकि यहाँ पर दरिया का पाट इतना चौड़ा था कि यहाँ पर कोई पुल न था, इसीलिए वसुन्धरा के पति ने सामानवाले खच्चरों को सुबह-सवेरे निगाली साहब की तरफ़ रवाना कर दिया, उनसे कह दिया कि वह शहर से दो मील बाहर कोठानी के पुल के पास उसका इन्तज़ार करें। दो घोड़े उसके अपने लिए और वसुन्धरा के लिए रख लिए और फिर वसुन्धरा को लेकर उसके मायकेवालों से विदा कराके शहर से बाहर जाने लगा।

वसुन्धरा और उसका पति दोनों अपने-अपने घोड़ों पर सवार, अपने ख्यालों में गिरफ़्तार शहर की सीमा से बाहर निकल गये। डुंगस के चश्मे से आगे जानेवाले रास्ते पर निकल गये। अब शहर की इमारतें खत्म हो चुकी थीं, धान और मक्का के खेत शुरू हो गये थे, लेकिन कहीं-कहीं इक्का-दुक्का रास्ते में कच्चे मकान दिखाई देते और सफरी चायखाने। रास्ते में सन्नाटा था और वसुन्धरा सिर झुकाये घोड़े की बाग ढ़ीली रखे कुछ सोचती चली जा रही थी। उसे आज अपना शहर छोड़ते हुए कितना अजब मालूम हो रहा था। वह क्या कर सकती है, जाना तो होगा उसे। एक तरह से ठीक भी है।

शहर बहुत पीछे रह गया; खेत, दुकान, कच्चे मकान भी पीछे रह गये, अब पहाड़ी रास्ता था, एक कच्ची पगडंडी-सी पहाड़ के सीने पर रेंगती हुई ऊपर जा रही थी। इस पहाड़ के दूसरी तरफ़ कोठानी का खतरनाक नाला था, जिसे पार करके वे निगाली साहब की तरफ़

बढ़ जाएँगे और फिर निगाली साहब में सीस नवाके वे कई ज़िन्दगी की तरफ़ रजौरी की जानिब बढ़ जाएँगे। अब दूर-दूर कोई आबादी नहीं है, सुनसान रास्ते, वीराना जंगल, कहीं-कहीं पेड़ों के नीचे पहाड़ी गड़रियों के खामोश गल्ले ढलवानों पर चरते हुए।

वसुन्धरा के दिल से एक आह निकली और वे दोनों पहाड़ी ऊँचाई का मोड़ काटके पहाड़ के दूसरी तरफ़ चले गये जहाँ कोठानी नाले पर लकड़ी का पुल था।

पहाड़ के दूसरी तरफ़ जाकर एकाएक उन्हें लोगों की एक भीड़ दिखाई दी। बहुत लोग थे, पाँच सौ के करीब होंगे, नहीं हज़ार से ऊपर होंगे, नहीं दो हज़ार के करीब होंगे, नहीं तीन हज़ार से भी ऊपर होंगे। यह उसके अपने शहर के लोग थे और इतनी बड़ी तादाद में रास्ते में खड़े थे कि उनकी ओट में लकड़ी का पुल छिप गया था।

वे दोनों जब उन लोगों के करीब पहुँचे तो किसी ने उनसे कुछ नहीं कहा, भीड़ ने छँटकर उन्हें रास्ता दे दिया। एक ने वसुन्धरा के घोड़े की बाग़ थाम ली, किसी दूसरे ने दूसरे घोड़े की बाग़ अपने हाथ में ले ली और आहिस्ता-आहिस्ता कुछ कहे बगैर वे लोग उनके साथ-साथ चलने लगे।

वसुन्धरा के पति ने आश्चर्य से पूछा :

"आप लोग कहाँ जा रहे हैं?"

"निगाली साहब!" एक शहरी ने जवाब दिया और गोपाल के साथ-साथ चलने लगा।

वसुन्धरा का पति हैरत में था, यह क्या माजरा है, मगर कोई उससे पूछताछ न करता था, न कोई वसुन्धरा से बात करता था, वे सब लोग एक काफ़िले की सूरत में खामोशी से उनके साथ चल रहे थे।

बहुत जल्द से लोग कोठानी के लकड़ी के पुल के करीब पहुँच गये, जो एक भयानक गहरे नाले की खड्ड के ऊपर स्थित था।

मगर यह देखकर वसुन्धरा के पति ने मुँह से आश्चर्य की ऐसी चीख निकल गयी कि नाले का पुल खड्ड के ऊपर स्थित नहीं था, बल्कि

खड्ड के अन्दर गिरा हुआ था और पानी उसके ऊपर बह रहा था।

"पुल टूट गया।" एक साहब बड़ी गम्भीरता से बोले। "सचमुच!" दूसरे साहब ने गोपाल को बताया, "देखिए, पुल टूट गया है।"

तीसरे साहब, जो वसुन्धरा के घोड़े की बाग़ थामे थे, अफ़सोस से सिर हिलाके बोले, "अब हम लोग निगाली साहब कैसे जाएँगे? पुल तो टूट गया है।"

वसुन्धरा का पति दिल ही दिल में गुस्से से पेच व ताव खा रहा था, इन कम्बख्तों ने खुद ही पुल तोड़ डाला है और मुझे किस भोलेपन से बता रहा हैं कि पुल टूट गया है, ये खुद हमारा रास्ता रोक रहे हैं और अपनी बुद्धि से मुझे बता रहे हैं कि वह तो किसी तरह की दिलचस्पी हमारे जाने, न जाने से नहीं रखते।

मगर ये सब लोग यहाँ आ कैसे गये? वह हैरान था। इन लोगों में सिर्फ़ नौजवान ही नहीं थे, बुड्ढे और अधेड़ उम्र के लोग भी थे, हिन्दू भी थे और मुसलमान भी, सिख भी और ईसाई भी, डोगरे भी और कश्मीरी पंडित भी, रंगीनतबीयत भी और उदासतबीयत भी, ऐसे लोग भी जिनके चाल-चलन पर अब तक किसी ने उँगली न रखी थी। उनमें दुकानदार भी थे और छोटे-मोटे हाकिम भी, बाग़ों के माली और गड़रिये भी और वे लोग भी जिनकी सूरत तक से वह परिचित नहीं था। वे सब उसे रोकने के लिए आये थे...उसके दिल में एक अजब जंग-सी होने लगी, इतने लोगों के आने की उसे खुशी भी थी और गुस्सा भी था और दोनों भाव एक-दूसरे से गुँथे हुए थे।

"मगर मैं तो जाऊँगा।" उसने अन्त में दाँत पीसकर कहा।

"मगर जाओगे कैसे? पुल तो है नहीं...और खड्ड गहरी है और उस खड्ड पर पुल बनाने के लिए कम-से-कम दो माह दरकार होंगे।" एक ने कहा।

"हाँ, ठीक है, दो माह दरकार होंगे।" एक ने कहा।

बुड्ढे कासिम जू ने कहा, "मेरी बेटी की शादी अगले माह में होगी, उसके ज़ेवर कौन तैयार करेगा?"

"और मेरी बहन कहती है, मैं तो गोपाल के हाथ की बनाई हँसली पहनूँगी अपनी शादी में! और तुम चले जा रहे हो।" चौथा बोला।

"यह सोलह तोले सोना है, मेरी बीवी के लिए दो गोखरू बना दो, जैसे तुमने ठाकुर दयालसिंह की चच्ची के लिए तैयार किये हैं। बिलकुल उसी डिज़ाइन के बनने चाहिए, गोपाल! तुम हमारे शहर के सबसे अच्छे सुनार हो, यह काम तो तुम्हें अपनी भाभी की खातिर करना ही होगा।" ठाकुर जगजीतसिंह कपड़े की एक छोटी-सी पोटली में बँधा हुआ सोना उसके हाथों में देने की कोशिश करने लगा। एकाएक उसको चारों तरफ़ से लोगों ने घेर लिया। कोई सोना लाया था, कोई चाँदी, अमीर और ग़रीब सब मिलकर उसको काम दे रहे थे; वे उसे जाने से नहीं रोक रहे थे, वे उसे इतना काम दे रहे थे कि वह अगले मास तो क्या अगले दो साल में भी उस काम को पूरा नहीं कर सकता था।

जो कुछ उन्होंने कहा था, वह इतना ज़रूरी नहीं था जितना वह ज़रूरी था जो उन्होंने उससे नहीं कहा था, और जो कुछ उन्होंने उससे नहीं कहा था, उसने उसके दिल को पकड़ लिया था। उसे अपना गला बन्द होता मालूम हुआ, उसकी आँखों में आँसू आने लगे, वे उसे सोने-चाँदी की रिश्वत नहीं दे रहे थे, प्यार की रिश्वत दे रहे थे, हम तुम्हें जाने न देंगे, किसी तरह जाने न देंगे।

वसुन्धरा के नेत्रों में जल छलक आया, उसने अपना मुँह दुपट्टे में छिपा लिया। "अच्छा अब मैं कभी यह शहर छोड़कर न जाऊँगा।" वसुन्धरा का पति अपने आँसू पोंछते हुए कहने लगा।

एकाएक नौजवान उछलने लगे और ढोल बजाने लगे और सब मिलकर पहाड़ी गीत गाने लगे, घोड़ों की बागें वापस फेर दी गयीं और यूँ तो मैंने अपनी ज़िन्दगी में बड़े-बड़े जुलूस और जश्न देखे हैं, मगर मुझे उस चमकीले रोज़ वाला वह छोटा-सा पहाड़ी काफ़िला कभी नहीं भूलता, जब एक छोटे-से शहर के लोग अपने शहर की खूबसूरती को वापस लेकर आये थे।

पेशावर एक्सप्रेस



जब मैं पेशावर से चली तो मैंने छकाछक आराम की साँस ली। मेरे डिब्बे में अधिकतर हिन्दू यात्री थे। यो लोग पेशावर से, मरदान से, कोहाट से, चारसद्धा से, खैबर से, लुण्डी कोतल से, नौशहरा, मांसहरा से आये थे। और पाकिस्तान में अपने जान व माल को सुरक्षित न पाकर हिन्दुस्तान की ओर यात्रा कर रहे थे। स्टेशन पर चारों ओर कड़ा पहरा था। और फौजवाले बड़ी चौकसी से काम ले रहे थे। उन लोगों को पाकिस्तान में पनाहगुज़ीं और हिन्दुस्तान में शरणार्थी कहा जाता था। इन लोगों ने उस समय तक चैन की साँस न ली जब तक मैंने पंजाब की धरती की ओर कदम न बढ़ाये। ये लोग चेहरे से पठान मालूम पड़ते थे। गोरे-चिट्टे, मज़बूत हाथ-पाँव, सिर पर कुलाह और लुंगी और शरीर पर कमीज व शलवार। ये लोग पश्तो भाषा में बात करते थे और कभी-कभी अक्खड़ा पंजाबी बोलते थे। इनकी सुरक्षा के लिए हर डिब्बे में हिन्दू सिपाही बन्दूकें लेकर खड़े थे। बलूची सिपाही अपनी पगड़ियों में—नयी-नयी राइफलें लिए हुए उन हिन्दू पठानों और उनके

बीवी-बच्चों की ओर मुस्करा-मुस्करा कर देखते थे, जो एक ऐतिहासिक भय से डरे हुए उस भूमि से भागे जा रहे थे, जहाँ वह हज़ारों वर्ष से निवास करते चले आये थे। जिनकी पथरीली धरती से उन्होंने शक्ति प्राप्त की थी, जिसके ठंडे स्रोत से उन्होंने पानी पिया था और जिसके सुन्दर बाग़ों से उन्होंने अंगूरों का रस पिया था। आज ये देश अचानक बेगाना हो गया था और इसने अपने हमदर्द सोने के दरवाज़े इन पर बन्द कर दिये थे और एक नये देश के तपते हुए मैदानों की कल्पना दिल में लिए, रूठे हुए दिल वहाँ से विदा हो रहे थे। उन्हें इस बात की ख़ुशी ज़रूर थी कि उनकी जानें बच गयी थीं, उनका सामान और मकान और उनकी बहू-बेटियों, माँओं और पत्नियों की मर्यादा सुरक्षित थीं लेकिन इनका दिल रो रहा था और आँखें सरहद के पथरीले सीने पर यूँ गड़ी हुई थीं जैसे इसे चीर कर अन्दर घुस जाना चाहती हैं और उसके ममता भरे फ़व्वारे से पूछना चाहती हैं बोल माँ! आज किस जुर्म की सज़ा में तूने अपने बेटों को घर से निकाल दिया है। अपनी बहुओं को, उस सुन्दर आँगन से तूने वंचित किया है जहाँ वह कल तक अपने सुहाग की रानियाँ बनी बैठी थीं। अपनी अलबेली नवयुवतियों को जो अंगूर की बेल की तरह तेरी छाती से लिपट रही थीं, झिंझोड़ कर क्यों अलग कर दिया है। किसलिए आज यह देश विदेश हो गया है। मैं चलती जा रही थी और डिब्बों में बैठी हुई मानव जाति अपने देश की बुलन्दी, इसकी ऊँची-ऊँची चट्टानों, इसकी सुन्दर वादियों और बाग़ों की तरफ़ यूँ देख रही थी जैसे जाने-पहचाने दृश्यों को अपने सीने में छुपाकर ले जाना चाहती हों, जैसे निगाह हर पल रुक जाएँ और मुझे ऐसा मालूम हुआ कि इस बड़े दुख और कष्ट से मेरे पाँव भारी हुए जा रहे हैं। और रेल की पटरी मुझे उत्तर दिये जा रही है।

हसन अब्दाल तक सब लोग दुख, व्याकुलता और निराशा की तस्वीर बने रहे। हसन अब्दाल के स्टेशन पर बहुत से सिख आये हुए

थे। पंजा साहेब से लम्बी-लम्बी कृपाणें लिए, चेहरों पर हवाइयाँ उड़ती हुई, बच्चे सहमे-सहमे से, ऐसा प्रतीत होता था कि अपनी ही तलवार के घाव से यह लोग मर जाएँगे। डिब्बों में बैठकर उन लोगों ने आराम की साँस ली और फिर उनकी सीमा से हिन्दुओं और सिख पठानों से बातचीत शुरू हो गई। किसी का घर-बार जल गया था। कोई केवल एक कमीज़ और शलवार में था। किसी के पाँव में जूती न थी और कोई इतना चतुर था कि अपने लोगों की सचमुच बहुत हानि हुई थी मगर चुपचाप बैठा था। और जिनके पास कभी कुछ भी न हुआ था वे अपनी लाखों की जायदाद के खोने का शोक मना रहे थे। और दूसरों को अपनी फर्ज़ी इमारत की कहानियाँ सुना-सुना कर आतंकित कर रहे थे, और मुसलमानों को गालियाँ दे रहे थे। बलूची सिपाही गर्व के साथ दरवाज़े पर राइफलें थामे खड़े थे। और कभी-कभी एक-दूसरे की तरफ़ कनखियों से देखकर मुस्करा उठते। तक्षशिला के स्टेशन पर मुझे बहुत अवधि तक खड़ा रहना पड़ा, न जाने किसकी प्रतीक्षा में, शायद आसपास के गाँवों से हिन्दू शरणार्थी आ रहे थे। जब गार्ड ने स्टेशन मास्टर से बार-बार पूछा तो उसने कहा जब तक आस-पास के गाँव से हिन्दू शरणार्थियों का जत्था न आ जाएगा यह गाड़ी आगे न जा सकेगी। एक घंटा और गुज़र गया। अब लोगों ने अपना सामान स्वयं खोला और खाने लगे। सहमे-सहमे बच्चे कहकहे लगाने लगे और मासूम नवयुवतियाँ खिड़कियों से बाहर झाँकने लगीं और बड़े बूढ़े हुक्के गुड़गुड़ाने लगे। थोड़ी देर के बाद दूर से हल्ला सुनाई दिया और ढोलों के पीटने की आवाज़ सुनाई देने लगी। हिन्दू शरणार्थियों का जत्था आ रहा था। लोगों ने सिर निकालकर इधर-उधर देखा। जत्था दूर से आ रहा था और नारे लगा रहा था। समय बीतता गया। जत्था समीप आता गया, ढोलों की आवाज़ तीव्र होती गयी। जत्थे के समीप आते ही गोलियों की आवाज़ कानों में आयी और लोगों ने अपने सिर खिड़कियों से पीछे

कर लिए। यह हिन्दुओं का जत्था था जो आस-पास के गाँवों से आया था। गाँव के मुसलमान इसे अपनी सुरक्षा में ला रहे थे इसलिए हर एक मुसलमान ने एक काफ़िर की लाश अपने कन्धे पर उठा रखी थी। जिसने जान बचाकर गाँव से भागने की कोशिश की थी। ऐसी दो लाशें थीं। जनसमूह ने यह लाशें आराम से स्टेशन पर पहुँचाकर बलूची दस्तों के हवाले कीं और कहा कि वे इन शरणार्थियों को अत्यन्त सुरक्षा के साथ हिन्दुस्तान की सीमा पर ले जाएँ।

बलूची सिपाहियों ने पूरे विश्वास के साथ इस बात की ज़िम्मेदारी ली और हर डिब्बे में पन्द्रह-बीस लाशें रख दी गयीं। इसके बाद जनसमूह ने हवा में फायर किया और गाड़ी चलाने के लिए स्टेशनमास्टर को कहा।

मैं चलने लगी थी कि फिर मुझे रोक दिया और जनसमूह के सरदार ने हिन्दू शरणार्थियों से कहा कि दो सौ आदमियों के चले जाने से इनके गाँव वीरान हो जाएँगे और इनका व्यापार बर्बाद हो जाएगा। इसलिए वे गाड़ी में से दो सौ आदमी उतारकर अपने गाँव ले जाएँगे। चाहे कुछ भी हो वे अपने देश को यूँ बर्बाद होता हुआ नहीं देख सकते। उस पर बलूची सिपाहियों ने इनकी समझबूझ और प्रतिभा की प्रशंसा की और इनके देश-प्रेम को सराहा। फिर बलूची सिपाहियों ने हर डिब्बे से कुछ आदमी निकाल और जनसमूह के हवाले किये। पूरे दो सौ आदमी निकाल लिए, एक कम न एक अधिक। लाइन लगाओ काफ़िरो।

सरदार ने कहा, सरदार अपने इलाक़े का सबसे बड़ा जागीरदार था और अपने ख़ून की घास में पवित्र जेहाद (धर्म युद्ध) की गूँज सुन रहा था। काफ़िर पत्थर की मूर्ति बने खड़े थे। जनसमूह के लोगों ने उन्हें उठा-उठाकर एक लाइन में खड़ा किया। दो सौ आदमी, दो सौ जीवित लाशें, चेहरे सुन्न। आँखें वातावरण में तीरों की वर्षा-सी महसूस करती हुई। पहल बलूची सिपाहियों ने की। पन्द्रह आदमी

फायरिंग से गिर गये। यह तक्षशिला का स्टेशन था। बीस और आदमी गिर गये। यहाँ एशिश का सबसे बड़ी यूनिवर्सिटी थी और लाखों विद्यार्थी यहाँ शिष्टाचार, संस्कृति, सभ्यता का पाठ पढ़ते और सभ्य मानव बनकर निकलते थे। पचास और गिर गये। तक्षशिला के अजायबघर में इतनी सुन्दर मूर्तियाँ थीं, इतने सुन्दर शिल्पकारी के अनूठे नमूने थे—प्राचीन सभ्यता के झिलमिलाते हुए दीये।

पचास और मारे गये।

पृष्ठभूमि में सरकूप का महल था और खेलों का एक थियेटर और मीलों तक फैले हुए एक विशाल शहर का खंडहर जो तक्षशिला की पिछली श्रेष्ठता से शिकायत के सूचक थे।

तीस और मारे गये।

यहाँ कनिष्क ने राज्य किया था। और लोगों को शान्ति, प्रेम, सौन्दर्य और दौलत से मालामाल किया था।

पचीस और समाप्त हुए।

यहाँ गौतम बुद्ध के ज्ञान का सुर गूँजा था। यहाँ भिक्षुओं ने अमन और शान्ति का पाठ पढ़ाया था।

अब अन्तिम गिरोह की मौत आ चुकी थी।

यहाँ पहली बार सीमा पर इस्लाम का झंडा लहराया था, समता, अपनापन और मानवता का झंडा।

सब मर गये। अल्लाह हू अकबर। ज़मीन खून से लाल थी और जब मैं प्लेटफ़ार्म से गुज़री तो मेरे पाँव रेल की पटरी से फिसले जाते थे जैसे मैं अभी गिर जाऊँगी और गिरकर शेष मुसलमानों को भी ख़त्म कर डालूँगी। हर डिब्बे में मौत आ चुकी थी और पास ही लाशें रख दी गयी थीं और जीवित लाशों का समूह चारों तरफ़ था। बलूची सिपाही मुस्करा रहे थे। कहीं कोई बच्चा रोने लगा, किसी बूढ़ी माँ ने सिसकी ली। किसी ने उजड़े हुए सुहाग ने आह की। और मैं चीखती रावलपिण्डी के प्लेटफार्म पर आ खड़ी हुई। यहाँ से कोई

शरणार्थी गाड़ी पर सवार न हुआ। एक डिब्बे में कुछ मुसलमान युवक पन्द्रह बीस बुर्केवालियों को लेकर सवार हुए। हर मुसलमन नौजवान राइफल से सशस्त्र थे। एक डिब्बे में बहुत सारा शस्त्र लादा गया। मशीनगनें और कारतूस, पिस्तौल और राइफलें। जेहलम और गुजरखाँ के बीच के इलाक़े में मुझे सिग्नल खींचकर खड़ा कर दिया गया। मैं रुक गयी, सशस्त्र नौजवान गाड़ी से उतरने लगे, बुर्कपोश महिलाओं ने शोर मचाना शुरू किया, हम हिन्दू हैं, हम सिख हैं, हमें ज़बरदस्ती ले जा रहे हैं। इन्होंने बुर्के फाड़ दिए और चिल्लाने लगीं। नौजवान मुसलमान हँसते हुए उन्हें घसीटकर गाड़ी से निकाल लाये। हाँ ये हिन्दू औरतें हैं। हम इन्हें रावलपिण्डी से इनके आरामदायक घरों, इनके खुशहाल परिवारों, इनके इज्जतदार माता-पिता से छीनकर लाये हैं। अब यह हमारी हैं। हम इनके साथ जो चाहें करे। अगर किसी में साहस है तो इन्हें हम से छीनकर ले जाए। सीमा के दो नौजवान हिन्दू पठान छलाँग मारकर गाड़ी से उतर गये। बलूची सिपाहियों ने अत्यन्त आराम से फायरिंग करके उन्हें मौत के घाट उतार दिया। पन्द्रह-बीस नवयुवक और निकले उन्हें भी सशस्त्र मुसलमानों के जत्थे ने मिनटों में समाप्त कर दिया। वास्तव में मांस की दीवार लोहे की गोली का सामना नहीं कर सकी। नवयुवक हिन्दू-महिलाओं को घसीटकर जंगल में ले गये और मैं मुँह छुपाकर वहाँ से भागी। काली डरावना धुआँ मेरे मुँह से निकल रहा था। जैसे प्रकृति पर दुष्टात्मीय कालापन छा गया था और साँस मेरे सीने में यूँ उलझने लगी जैसे ये अपनी छाती अभी फट जाएगी और अन्दर भड़कते हुए लाल-लाल शोले इस जंगल को जलाकर राख कर देंगे, जो इस समय मेरे आगे-पीछे फैला हुआ था और जिसने उन पन्द्रह महिलाओं को अपने भीतर समेट रखा था।

लाला मुसा के समीप लाशों से इतनी सड़ी हुई बदबू निकलने लगी कि बलूची सिपाही उन्हें बाहर फेंकने पर मजबूर हो गये। हर

बार वे इशारे से एक आदमी को बुलाते और उससे कहते कि उस लाश को उठाकर यहाँ लाओ दरवाज़े पर और जब वह आदमी लाश को उठाकर दरवाज़े पर लाता तो वे उसे गाड़ी से बाहर धक्का दे देते। थोड़ी देर में सब लाशें एक-एक हमराही के साथ बाहर फेंक दी गयीं। डिब्बों में आदमी कम हो जाने से टाँगें फैलाकर बैठने की जगह भी हो गयी।

लाला मुसा गुजरा तो वजीराबाद आया। वजीराबाद का प्रसिद्ध जंक्शन—वजीराबाद का प्रसिद्ध शहर, जहाँ हिन्दुस्तान भर के लिए छुरियाँ और चाकू तैयार होते हैं। वजीराबाद जहाँ के हिन्दू और मुसलमान सैकड़ों वर्षों से बैसाखी का मेला बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं और उसकी खुशी में इकट्ठे हिस्सा लेते हैं। वजीराबाद का स्टेशन लाशों से भरा पड़ा था। शायद वे लोग बैसाखी का मेला देखने आये थे। लाशों का मेला। शहर में धुआँ उठ रहा था। और स्टेशन के समीप अंग्रेजी बैंड की आवाज़ सुनाई दे रही थी। कुछ ही क्षण बाद जत्था स्टेशन पर आ गया। आगे-आगे देहाती नाचते और गाते आ रहे थे और उनके पीछे नंगी औरतों का जत्था था। ऊपर से नीचे तक नंगी औरतें, बूढ़ी नौजवान, बच्चियाँ, दादियाँ और पोतियाँ, माँएँ और बहुएँ और बेटियाँ, नवयुवतियाँ नाचते-गाते हुए पुरुषों की भीड़ में थीं। महिलाएँ सिख और हिन्दू थीं और पुरुष मुसलमान थे और दोनों ने मिलकर एक आश्चर्यजनक बैसाखी मनाई थी। महिलाओं के केश खुले थे और शरीर पर घावों के निशान थे और वह उस तरह सीधी तनकर चल रही थीं जैसे हज़ार कपड़ों में इनके शरीर छिपे हों, जैसे इनकी आत्माओं पर शान्त मृत्यु के गहरे साये छा गये हों। इनकी निगाहों का प्रताप परी को शरमा दे, ऐसा था और होंठ दाँतों के अन्दर ऐसे कसे हुए थे मानो किसी लावे का मुँह बन्द कर दिया गया हो। शायद यह लावा अभी फट पड़ेगा और अपने तीव्र धमाके से दुनिया में प्रलय ला देगा। नाचते-थिरकते पग परे हट गये। यह

आश्चर्यजनक समूह अब डिब्बों के सामने था। डिब्बों में बैठी महिलाओं ने घूँघट काढ़ लिए और डिब्बे की खिड़कियाँ एक के बाद एक बन्द होने लगीं।

बलूची सिपाहियों ने कहा, खिड़कियाँ मत बन्द करो। हवा रुकती है। खिड़कियाँ बन्द होती गईं, बलूची सिपाहियों ने बन्दूकें तान लीं। ठायें-ठायें, फिर भी खिड़कियाँ बन्द होती गईं। और अब एक खिड़की खुली न थी कुछ लोग अवश्य मर गये।

नंगी महिलाएँ शरणार्थियों के साथ बिठा दी गयीं। और मैं इस्लाम, ज़िन्दाबाद, क़ायदे आज़म ज़िन्दाबाद के नारों के बीच फिर चल पड़ी।

गाड़ी मे बैठा एक बच्चा लुढ़कता-लुढ़कता एक बूढ़ी दादी के पास चला आया और उससे पूछने लगा, "माँ क्या तुम नहाकर आयी हो?"

"तुम्हारे कपड़े कहाँ हैं माँ?"

"उन पर मेरे सुहाब के खून के छींटे थे बेटा वे लोग इन्हें धोने के लिए ले गये हैं।"

दो नंगी युवतियों ने गाड़ी से छलाँक लगा दी और मैं चीखती-चिल्लाती लाहौर पहुँची।

मुझे नं. 1 प्लेटफ़ार्म पर खड़ा किया गया। न. 2 प्लेटफार्म पर दूसरी गाड़ी खड़ी थी। अमृतसर से आयी थी और इसमें मुसलमान शरणार्थी बन्द थे। थोड़ी देर बाद मुस्लिम सेवक मेरे डिब्बों में तलाशी लेने आये। और गहने, रुपये और दूसरा कीमत सामान शरणार्थियों से ले लिया गया। इसके बाद चार सौ आदमी डिब्बों से निकालकर खड़े किये गये जैसे झटके की प्रतीक्षा में बकरे खड़े किये हों। क्योंकि अभी न. 2 प्लेटफ़ार्म पर जो मुस्लिम शरणार्थियों से लदी गाड़ी रुकी थी उसमें चार सौ आदमी कम थे। और पचास मुस्लिम औरतों का अपहरण कर लिया गया था। इसलिए यहाँ भी पचास औरतें चुन-चुनकर

निकाल ली गईं और चार सौ यात्रियों को जान से मार डाला गया ताकि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में आबादी का पलड़ा बराबर रहे।

मुस्लिम सेवकों ने एक सीमा बना रखी थी और छुरे उनके हाथ में थे जिससे बारी-बारी एक शरणार्थी इनके छुरे की धार पर आ जाता था। कुछ ही क्षणों में चार सौ आदमी मौत के घाट उतार दिये गये। अब मुझे अपने शरीर के हर भाग से घिन्न आने लगी थी। उस तरह दुर्गन्ध महसूस कर रही थी मैं जैसे मुझे शैतान ने जहन्नुम से निकालकर पंजाब भेज दिया हो। अटारी पहुँचकर कुछ वातावरण बदला। मुगलपुरा ही से बलूची सिपाही बदले गये थे और इनका स्थान डोगरा और सिख सिपाहियों ने ले लिया था। लेकिन अटारी पहुँचकर तो मुसलमानों की इतनी लाशें हिन्दू शरणार्थियों ने देखीं कि उनके दिल खुशी से बाग़-बाग़ हो गये। स्वतन्त्र भारत की सीमा आ गयी थी। नहीं तो इतना सुन्दर दृश्य कहाँ से देखने को मिलता। और जब मैं अमृतसर स्टेशन पर पहुँची तो सिखों के नारों ने धरती-आकाश एक कर दिया। यहाँ भी मुसलमानों की लाशों के ढेर थे। और हिन्दू जाट व सिख और डोगरे हर डिब्बे में झाँक-झाँककर पूछते, "कोई शिकार है। मतलब कोई मुसलमान है?"

एक डिब्बे में चार हिन्दू ब्राह्मण सवार हुए। सर मुँडा हुआ, लम्बी चोटी, राम नाम की धोती बाँधे हरिद्वार की यात्रा कर रहे थे। यहाँ हर डिब्बे में आठ-दस सिख व जाट भी बैठ गये। ये लोग राइफलों और बमों से सशस्त्र थे और पूर्वी पंजाब में शिकार की तलाश में जा रहे थे। उनमें से एक के दिल में कुछ खटका, उसने एक ब्राह्मण से पूछा–

"ब्राह्मण देवता किधर जा रहे हो?"

"हरिद्वार तीर्थ करने।"

"हरिद्वार जा रहे हो या पाकिस्तान?'

"मियाँ अल्लाह-अल्लाह करो।" ब्राह्मण के मुँह से निकला।

जाट हँसा, "तो आओ अल्लाह-अल्लाह कराएँ। ओ नन्नेआ, सुनिया, शिकार मिल गया। भई आओ वाह। हुन अल्लाह बेली कर लइए" इतना कहकर जाट ने नकली ब्राह्मण पर वार किया। दूसरे ब्राह्मण भागने लगे। जाटों ने इन्हें पकड़ लिया, "ऐसे नहीं ब्राह्मण देवता कम से कम डाक्टरी जाँच तो कराते जाओ। हरिद्वार जाने से पहले डाक्टरी जाँच आवश्यक है न।"

डाक्टरी जाँच से उद्देश्य ये था कि वे लोग ख़तना देखते थे और जिसका ख़तना हुआ था उसे वहीं मार डालते थे। चारों मुसलमान जो ब्राह्मण की वेश-भूषा में अपनी जान बचाकर भाग रहे थे, वहीं मारे डाले गये। फिर मैं आगे चली।

रास्ते में एक जगह जंगल में मुझे खड़ा कर दिया गया। शरणार्थी, सिपाही और सिख व जाट सब निकल-निकल कर जंगल की ओर भागने लगे। मैंने सोचा शायद मुसलमानों की बहुत बड़ी फौज इन पर हमला करनेवाली है। इतने में क्या देखती हूँ कि जंगल में बहुत सारे मुसलमान अपने बीवी-बच्चों के साथ छुपे बैठे हैं। 'सत श्री अकाल' और 'हिन्दूधर्म की जय' के नारों की गूँज से सारा जंगल काँप उठा और वे सारे मुसलमान वश कर लिए गये। आधे घण्टे में सब सफाया हो गया। बूढ़े, जवान, औरतें, बच्चे सब के सब मार डाले गये। एक जाट की तलवार की नोक पर एक नन्हें बच्चे की लाश थी और वह उसे हवा में नचा-नचा कह रहा था–आयी बैसाखी, आयी बैसाखी जटा लाए है-है...

जालन्धर के उधर पठानों का एक गाँव था। यहाँ पर गाड़ी रोककर लोग गाँवों में घुस गये। सिपाही और शरणार्थी जाट-पठानों ने सामना किया पर अन्त में मारे गये। बच्चे और पुरुष मारे गये तो औरतों की बारी आयी वहीं उस खुले मैदान में जहाँ गेहूँ के खलिहान होते थे और सरसों के फूल मुस्कराते थे। उसी विशाल मैदान में जहाँ पंजाब के दिल ने हीर-राँझा और सोहनी-महिवाल के प्यार भरे गीत

गाये थे। इन्हीं शीशम, सरस और पीपल के पेड़ों के बीच सामयिक चकले आबाद हुए। पचास और पाँच सौ परिवार, पचास भेड़ें, और पाँच सौ कसाई, पचास सोहनियाँ और पाँच सौ महिवाल, शायद चनाब में अभी कभी जलप्लावन न होगा, शायद अब कोई वारिसशाह की हीर न गाएगी। शायद अब मिर्ज़ा साहिबां की कहानियाँ इन मैदानों में कभी न गूँजेंगी। लाखों बार धिक्कार हो इन पथ-प्रदर्शकों पर और इनकी आनेवाली सन्तानों पर, जिन्होंने इस सुन्दर पंजाब के, उस अलबेले, प्यारे, सुनहे पंजाब के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और इसकी पवित्र आत्मा को दफना दिया था। और इसके शक्तिशाली बन्धन में पीप भर दी थी। आज पंजाब मर गया था। इसके गीते गूँगे हो गये थे। इसके गीत, इसकी ज़बान मर गयी थी। इसका बेबाक, निडर, भोलाभाला दिल मुर्दा और न महसूस करते हुए और आँख-कान न रुकते हुए भी मैंने पंजाब की मृत्यु देखी। डर और घृणा से मेरे पैर उसी पटरी पर रुक गये।

पठान पुरुषों और महिलाओं की लाशें उठाये जाट व सिख और डोगरे और सीमा के हिन्दू वापस लौटे। फिर मैं आगे चली। आगे एक नहर बहती थी। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद मैं रोक दी जाती। ज्योंही कोई डिब्बा नहर के पुल सी गुज़रता लाशों को ठीक नीचे पानी में गिरा दिया जाता। इस प्रकार जब हर डिब्बे के रुकने के बाद सब लाशें पानी में गिरा दी गईं तो लोगों ने देशी शराब की बोतलें खोलीं और मैं खून, नफ़रत और शराब की भाप उगलती हुई आगे बढ़ी।

लुधियाना पहुँचकर लुटेरे गाड़ी से उतर गये और शहर में जाकर उन्होंने मुसलमानों के मुहल्ले का पता ढूँढ़ा फिर वहाँ हमला किया, लूटमार के बाद जितना सामान हाथ लगा उसे लादकर चार-पाँच घंटों के बाद वापस आये। जब तक लूटमार न हो जाती, जब तक दस बीस मुसलमानों का खून न बहता, जब तक सब शरणार्थी अपनी

नफरत की प्यास न बुझा लेते, मेरा बढ़ना कठिन ही नहीं असम्भव था। मेरी आत्मा में इतने घाव थे और मेरे शरीर का अंग-अंग गन्दे अपवित्र हत्यारों के कहकहों से इस तरह रच गया था कि स्नान की अत्यन्त आवश्यकता मालूम पड़ रही थी। लेकिन मुझे मालूम था कि इस यात्रा में कोई मुझे नहाने न देगा।

अम्बाला स्टेशन पर रात के समय मेरे फर्स्ट क्लास के डिब्बे में एक मुसलमान डिप्टी कमिश्नर और उसकी पत्नी व बच्चे सवार हुए। इसी डिब्बे में एक सरदार साहब और उनकी पत्नी भी थी। फौजियों के पहरे में मुसलमान डिप्टी कमिश्नर को सवार किया गया। और फौजियों को इनके जान व माल की सुरक्षा के लिए कड़े निर्देश दिये गये।

रात के दो बजे मैं अम्बाला से चली और दस मील आगे जाकर रोक दी गयी। फर्स्ट क्लास का डिब्बा अन्दर से बन्द था पर लोग खिड़की के शीशे तोड़कर अन्दर आ गये फिर डिप्टी कमिश्नर, उनकी पत्नी और उनके छोटे-छोटे बच्चों का नरसंहार किया गया। डिप्टी कमिश्नर की एक लड़की थी बड़ी सुन्दर, वह किसी कॉलेज में पढ़ती थी। दो-एक नौजवानों ने सोचा उसे बचा लिया जाए। ये सुन्दरता, ये रौनक़, ये यौवन, ये ताज़गी, ये जवानी किसी के काम आ सकती है। इतना सोचकर उन्होंने जल्दी से लड़की और गहनों के बक्स को सँभाला और गाड़ी से उतरकर जंगल में चले गये। लड़की के हाथ में एक किताब थी।

यहाँ आकर कान्फ्रेंस शुरू हुई कि लड़की को छोड़ दिया जाए या मार दिया जाए।

लड़की ने कहा, "मुझे मारते क्यों हो? मुझे हिन्दू बना लो, मैं तुम्हारा धर्म स्वीकार करता हूँ। तुममें से कोई मुझसे विवाह कर लो। मेरे प्राण ले के क्या करोगे।"

"ठीक ही तो कहती है।" एक बोला।

दूसरे ने लड़की के पेट में छुरा भोंकते हुए कहा, "मेरे अनुसार इसे ख़त्म कर देना ही उचित है। चलो गाड़ी में चलो, यहाँ क्या कान्फ्रेंस रखी है।"

लड़की जंगल की घास पर तड़प-तड़पकर मर गयी। उसकी किताब उसके खून से भीगी पड़ी थी। किताब का शीर्षक था "समाजवादी कार्य और दर्शनशास्त्र लेखक–जॉन एस्ट्रेजी", वह बुद्धिजीवी लड़की होगी। उसकी सोच में देश और देशवासियों की सेवा के इरादे होंगे। उसकी आत्मा में किसी से प्यार करने, किसी को चाहने, किसी से गले लग जाने, किसी बच्चे को दूध पिलाने की भावनाएँ होंगी। वह लड़की थी, वह माँ थी, वह पत्नी थी, वह प्रेमिका थी, वह विश्व की उत्पत्ति का पवित्र रहस्य थी। और अब उसकी लाश जंगल में पड़ी थी, गीदड़ और गिद्ध उसकी लाश को नोंच-नोंचकर खा रहे थे।

समाजवाद, दर्शनशास्त्र और कार्य–जंगली दरिन्दे इन्हें नोंच-नोंचकर खा रहे थे, और कोई बोलनेवाला नहीं था, कोई आगे बढ़नेवाला नहीं था। जनता में से कोई इंकलाब का दरवाज़ा तक खोलनेवाला नहीं था। और मैं रात के अँधेरे में आग और शरारों को छुपाकर आगे बढ़ रही थी और मेरे डिब्बों में लोग शराब पी रहे थे और 'महात्मा गाँधी की जय' का नारा लगा रहे थे।

एक लम्बे अन्तराल के बाद मैं वापस बम्बई आयी हूँ। यहाँ मुझे स्नान कराकर शेड में खड़ा कर दिया गया है। मेरे डिब्बों में अब शराब की बफारें नहीं हैं। खून की छींटे नहीं हैं। जंगली खूनी कहकहे नहीं हैं। मगर रात के एकान्त में जैसे भूत जाग उठते हैं, मृत आत्माएँ जाग जाती हैं, और घायलों की चीखें, औरतों की, बच्चों की पुकार हर तरफ़ वातावरण में गूँजने लगती है। और मैं चाहती हूँ कि अब मुझे कोई इस यात्रा पर न ले जाए। मैं इस शेड से बाहर निकलना नहीं चाहती। मैं इस भयानक यात्रा पर फिर से जाना नहीं

चाहती। अब मैं उस समय जाऊँगी जब मेरी यात्रा पर दोनों तरफ़ सुनहरे गेहूँ के खलिहान लहराएँगे।

और सरसों के फूल झूम-झूमकर पंजाब के रसीले प्यार भरे गीत गाएँगे और किसान, हिन्दू और मुसलमान मिलकर खेत काटेंगे, बीज बोएँगे, हरे-हरे खेतों में नलाई करेंगे और उनके दिलों में प्रेम वफ़ादारी और आँखों में शर्म और आत्माओं में औरत के लिए प्यार, मुहब्बत और इज्ज़त की भावनाएँ होंगी।

मैं लकड़ी की एक निर्जीव गाड़ी हूँ लेकिन फिर भी मैं चाहती हूँ कि उस खून मांस और नफ़रत के बोझ से मुझे न लादा जाए। मैं अकालग्रस्त इलाकों में अनाज ढोऊँगी; मैं कोयला, तेल और लोहर लेकर कारखानों में जाऊँगी; मैं किसानों के लिए नए हल, और नयी खाद उपलब्ध कराऊँगी; मैं अपने डिब्बों में किसानों और मज़दूरों की खुशहाल टोलियाँ लेकर जाऊँगी और पवित्र महिलाओं की मीठी निगाहें, अपने मर्दों के दिल टटोल रही होंगी और आँचलों में नन्हे-नन्हे सुन्दर बच्चों के चेहरे कमल के फूलों की तरह खिले नज़र आयेंगे। और वे उस मौत को नहीं वरन् आनेवाली ज़िन्दगी को झुककर प्रणाम करें, जब न कोई हिन्दू होगा न मुसलमान बल्कि सब मेहनतकश होंगे और इन्सान।

नयी शलवार



पौ फट चुकी थी, किन्तु सूर्य अभी निकला न था। बेगमाँ ने पहाड़ की ढलवान से, जहाँ गाँव आबाद था, नीचे नदी की तलहटी पर दृष्टि डाली। धान की पनीरी की एक बड़ी-सी तिकोन में उसे अपना पति काम करता हुआ दिखाई दिया। इतनी दूर से वह बिलकुल खिलौना-सा दिखाई देता था—उन खिलौनों की भाँति नन्हा और सुन्दर, जिनसे वह बचपन में खेला करती थी। चीड़ के चनाठों को इकट्ठा करके, उनमें लकड़ी की खपचियाँ आर-पार फँसाकर, उनके सिरों पर अखरोटों को खोखला करके वह लगा दिया करती थी—और खिलौने तैयार हो जाते थे। सरदार और उनके सिपाही और उनकी पत्नियाँ; पत्नियों के मूँछे नहीं होती थीं; और जो पुरुष होते थे, उनके चेहरों पर मक्की के भुट्टों के कोमल रेशमी बाल लगा दिये जाते थे। और उसे याद आया कि एक बार उसकी गुल से केवल इसलिए लड़ाई हो गयी कि गुल पुरुष-खिलौनों में मक्की के भुट्टों की काली मूँछे लगानी चाहता था। और लाल मूँछें लगाना पसन्द करती थी। वे दोनों बहस करते हुए गुत्थम-गुत्था हो गये थे और

बेगमाँ ने क्रोध में आकर गुल का मुँह नोच लिया था। हाँ, अब गुल के चेहरे पर वह चिह्न नहीं था—बल्कि अब उल्टा गुल प्रायः उसके चेहरे पर ऐसे लाल चिह्न डाल दिया करता था, कि चश्मे पर जाते हुए उसकी सहेलियाँ उसे छेड़ा करती थीं। यह सोचकर उसके होंठ काँपे और उसके कपोलों पर धीमी-सी लाली दौड़ गई। इसी प्रकार की लाली अब उत्तरी आकाश पर भी दौड़ रही थी जैसे सूर्य ने अपनी बेगमाँ का मुख चूम लिया। चलते-चलते बेगमाँ लड़खड़ा गयी और एक पत्थर पर बैठ गयी और अपने सुनहरे परेशान केशों को सँवारते हुए, नीचे नदी की तलहटी की ओर देखने लगी।

धान की पनीरी का रंग चमकीला और गहरा था। ऐसा हरा रंग तो उसने गाँव के बजाज के पास भी न देखा था, जिसके पास बड़े-बड़े सुन्दर रंग वाले कपड़े थे। पास ही देवदार के दो हरे-हरे छतारे बड़े गर्व से आकाश की ओर सिर उठाए खड़े थे। किन्तु उनका रंग भी तो इतना ही गहरा हरा था! इस हरे रंग में थोड़ी-सी स्याही भी घुल गयी थी, जैसे उस झरने के पानी में होती है जो बहुत गहरा हो।

पहाड़, गाँव, घाटी और नदी सब नींद में खोए हुए थे! जंगल शान्त थे; झरने चुपचाप। वह स्वयं भी धीरे-धीरे पग रखती हुई नीचे उतर रही थी—बड़े-बड़े पत्थरों से बचती हुई जो पगडंडी पर इधर-उधर बिखरे पड़े थे। ऐसा मालूम होता था कि ये पत्थर भी सोए पड़े थे और उन्हें जगाना उचित न था। स्वयं उसके शरीर में भी तो एक नन्हा-सा खिलौना सो रहा था—उस बचपन की कुँवारी आकांक्षाओं का मूर्त रूप। यह विचार आते ही वह डगमगाने लगी। उसके शरीर में एक रौ-सी दौड़ने लगी। यह रौ, जिसमें नदी के पानी का-सा कोमल प्रवाह और बिजली की-सी तेजी और लपक थी, उसके धड़, पेट और वक्ष में चक्कर काटने लगी। बेगमाँ को अपना साँस फूलता हुआ मालूम दिया। एकाएक उसके कानों में

आवाज आयी, जैसे कोई वृक्ष के तने पर कुल्हाड़ा चला रहा हो—खट-खट, खट-खट। उसने गलत समझा था कि वह और उसका पति ही सबसे पहले जागे हैं। गाँव का बूढ़ा चौकीदार रोशनदीन उनसे भी पहले उठा था और एक चीड़ के तने में से सुनहरी और पतली-पतली दीनियाँ निकाल रहा था।

एकाएक उसे विचार आया कि घर में तो दीनियाँ बिलकुल खत्म हो चुकी हैं और आज दीनियों के बिना आग कैसे जलाएगी? उजाला कैसे होगा? आज रात तो उसे दीनियों के सुनहरी उजाले की और अधिक आवश्यकता है। आज रात वह दीनियों के शोलों के प्रकाश में अपनी नयी शलवार पहनकर देखेगी। वह शलवार पहनकर और बाँहें फैलाकर गुल के सामने एक नाचती हुई तितली की भाँति थिरक उठेगी, और गुल उसे गले लगा लेगा। बेगमाँ के होंठ काँपने लगे और उसके चेहरे पर लालिमा दौड़ गयी और वह रोशनदीन के बिलकुल निकट जा खड़ी हुई। गाँव के बूढ़े चौकीदार ने एक क्षण के लिए बेगमाँ की ओर मुड़कर देखा और फिर अपने काम में संलग्न हो गया। वह अपनी छोटी कुल्हाड़ी की सहायता से चीड़ के तने में से दीनियाँ निकाल रहा था। तने के शरीर में एक गहरा घाव दिखाई दे रहा था और धरती पर दीनियों के ढेर इकट्ठा हो गया था।

"कहाँ जा रही हो बेटी?" रोशनदीन ने उसकी ओर मुड़े बगैर पूछा।

"नीचे पनीरी के खेतों में।"

"गुल को मैंने सुबह इधर से जाते हुए देखा था। शायद तीसरा पहर होगा। मैं जब भी दीनियाँ निकाल रहा था। यह तना कमबख्त बड़ा सख्त है।" बूढ़े रोशनदीन ने कुल्हाड़ी से जोर-जोर से चोटें लगाते हुए कहा।

बेगमाँ चुप खड़ी रही।

"अब धान की पनीरी अच्छी है। तुम्हारे खेतों की पनीरी बहुत अच्छी और जानदार दिखाई देती है—गुल कितने महीनों के बाद वापस आया है।"

"तीन महीने के बाद।"

"बारामूले में क्या करता था? किसी लकड़ी के ठेकेदार के पास नौकर था न?"

"हाँ! पर यहाँ धान का काम सँभालने वाला कोई न था। देवर बीमार है। इसलिए मैंने बारामूले खत लिखवा भेजा था।"

"तुमने अपने देवर को मेरी जड़ी खिलाई थी?"

"और भी कई जड़ी-बूटियाँ खिला चुकी हूँ। अब तो बारामूला से दवा आयी है, खिला रही हूँ।"

"अल्लाह फजल करेगा...किन्तु इस समय खेतों में क्या करने जा रही हो?"

"वो...पार वाले गाँव में दर्जी को शलवार सीने दे रखी थी, आज उसने देने का वादा किया है।" बेगमाँ ने कमजोर, धीमे, लजीले स्वर में कहा।

"वाह!" बूढ़े रोशनदीन ने मुड़कर बेगमाँ को मुस्कराते हुए कहा।

"गुल बहुत अच्छा लड़का है...बहुत अच्छा लड़का है...नयी शलवार...मुझे याद है (खासकर) जब मेरी बीवी ने एक बार मुझसे रेशम के कपड़े की शलवार माँगी थी, और मैंने कहा था कि मैं श्रीनगर से लेकर आऊँगा। पर श्रीनगर में मेरे पास पैसे खत्म हो गये और मैं रेशम की शलवार न ला सका। बड़ी नेक थी वह... जिन्दगी-भर रेशमी शलवार पहनना उसे नसीब न हुआ। मरते दम तक उसके दिल में यह चाह रही थी..." बूढ़े चौकीदार की आँखों में आँसू भरे हुए थे, कुल्हाड़ी हाथ में काँप रही थी।

बेगमाँ ने धीरे से पूछा—"चाचा, मैं इसमें से थोड़ी-सी दीनियाँ

ले लूँ? हमारे यहाँ आज खत्म हो गयी हैं और...''

''हाँ, हाँ बेटी, जितनी जरूरत हो ले जाओ...मैं आज नदी के पार की घाटी पर जाऊँगा। आज कुंड पर मेला है और सड़क पर बहुत से सैलानी लारियों और ताँगों पर जाते हुए मिलेंगे। उम्मीद है मेरी सब दीनियाँ बिक जाएँगी!''

बेगमाँ ने दीनियाँ उठाते हुए कहा—''सुना है कुंड पर रात को सैलानी लोग दीनियों की मशालें जलाते हैं?''

''बेटी, अगर बाहर के लोग कश्मीर में न आयें तो हम लोग भूखे मर जाएँ...अल्लाह बड़ा कारसाज है।''

बूढ़ा फिर खाँसने लगा, और कुल्हाड़ी से खट-खट करने लगा। बेगमाँ वहाँ से चल दी। दीनियों का गट्ठा उसने दुपट्टे में रख लिया था। शीघ्र-शीघ्र पग उठाती हुई वह नदी की तलहटी में पहुँच गयी। एकाएक सूर्य निकल आया और सारी घाटी में जैसे एक हलचल-सी मच गयी। कीड़े-मकोड़े और टिड्डे, जो ओस के लबादों में लिपटे हुए बेसुध पड़े थे, जागकर घास पर फुदकने लगे। किरणों से छूकर धान की पनीरी का रंग और भी गहरा चमकीला हो गया और उसकी फुनगियाँ सागर की तरंगों की भाँति खेत के तिकोने में नृत्य करने लगीं। नदी का पानी जो पहले चुपचाप मालूम होता था एकाएक संगीत छलकाने लगा। संगीत और प्रकाश, प्रकाश और जीवन, जीवन और गति—ऐसा मालूम होता था कि सूर्य की किरणों में कोई चेतनशक्ति छिपी पड़ी थी, जो हर उस वस्तु को संजीव कर रही थी, जिससे पूर्व की किरणें स्पर्श कर रही थीं।

गुल बहुत तेजी से काम कर रहा था। उसके लाल मुख पर पसीनों की लकीरें थीं, और हाथों में धान की पनीरी। वह घुटनों तक खेत के पानी में कीचड़ में धँसा हुआ था और बहुत फुर्ती से पनीरी उखाड़-उखाड़ कर खेत में ठीक फासले पर लगा रहा था।

बेगमाँ खेत के निकट एक पत्थर पर बैठ गई। दोनों एक-दूसरे

की ओर देखकर मुस्कराये। प्रातःकाल के प्रथम प्रकाश का गीत उनकी आँखों में था, उनके दिलों में, उनकी आत्मा के कोने कोने में था।

''बहुत जल्दी आन पहुँची हो? अभी तो आधे खेत में भी पनीरी नहीं जमा सका''—गुल ने मुस्कराते हुए कहा।

यह शिकायत नहीं, कृतज्ञता का प्रदर्शन था।

बेगमाँ ने मुस्कराकर और मुँह फेरकर पनचक्की की ओर देखा, जो नदी की दूसरी ओर थी। फिर उसकी मुस्कान ने नदी से परे उस ऊँची घाटी को छू लिया जिसकी चोटी पर मोटर की सड़क गुजरती थी। घाटी की समतल सतह से होकर उसकी मुस्कान उस चोटी से परे, ऊँची-ऊँची पर्वत-श्रेणियों पर जा पहुँची, जहाँ विस्तृत और सघन वन और उत्तर की ओर एक छोटा-सा गाँव था—वह दूसरा गाँव, जिसके दर्जी को गुल ने बेगमाँ की शलवार सीने को दी थी।

यह मुस्कान घूमकर फिर से गुल के मुख पर आ पहुँची—यह मुस्कान यह दृष्टि पर यह प्रकाश की किरण! बेगमाँ बोली—''और वापस भी तो आना है। अब चलोगे तो मुश्किल से वक़्त पर लौट सकोगे!''

उसकी बात सुनते ही गुल ने पनीरी हाथ से छोड़ दी और खेत से बाहर निकल आया। और नदी के किनारे बैठकर अपनी नंगी टाँगों से कीचड़ उतारने लगा।

सूसी की शलवार, जिसकी लाल जमीन पर सफेद चम्पई फूल झिलझिला रहे थे, पहनकर बेगमाँ अत्यन्त प्रसन्न हुई। बीस-बाईस गज कपड़े की शलवार होगी—गुल की तीन मास की कमाई। बेगमाँ ने शलवार को दर्जी के हाथ से लेते हुए अपने पति की ओर प्यार-भरी दृष्टि से देखा। कुछ प्यार, कुछ अभिमान, कुछ चंचलता—हँसकर बोली—''और कमीज? छींट की लूँगी—''

गुल बोला—"छींट की कमीज भी बनवा दूँगा। दो-तीन महीने और ठहर जा। तब तक शायद नन्हे के लिए भी कुछ बनवाना पड़े।"

बेगमाँ शर्म से लाल हो गयी। दृष्टि नीचे करके बोली—"शर्म तो नहीं आती।"

गुल मुस्कराने लगा और उसने दर्जी की ओर देखकर आँख मींच ली।

मार्ग में सम्बलू की बड़ी-सी झाड़ी दिखाई दी, जिस पर नीला धारी की घनी बेल लिपटी हुई थी। इस झाड़ी की ओट में बैठकर बेगमाँ ने शलवार बदली। चलते-चलते वह नेफे की चुन्नट को सँवारती जाती थी, और बीस-बाईस गज की शलवार के घेरे और उसके सुन्दर फूलों को देख-देखकर मग्न हो रही थी। नयी शलवार ने उसकी चाल में एक नजाकत और एक नया मतवालापन पैदा कर दिया था। उसकी चाल में अभिमान की भावना पैदा हो गयी। फिर उसने एक अनोखी अदा से जो गुल को बहुत प्यारी लगी, अपना सिर गुल के कन्धे पर रख दिया। वे कुछ समय तक इसी प्रकार चलते रहे, बाँहों में बाँहें डाले। दर्जी का घर ओट में छिप गया था। धरती पर चीड़ के पीले-पीले नुकीले झूमर बिछे हुए थे और उनके पाँवों के स्पर्श से रेशम के कपड़ों की भाँति सरसराते थे मानो धरती ने भी नयी शलवार पहन ली थी। चीड़ के पीले-पीले झूमरों की शलवार, जिस पर जगह-जगह बनफ्शे के फूलों की गुलकारी थी। वृक्षों की टहनियों पर जंगली पक्षी चहचहा रहे थे। और बादल, देवदार और चीड़ की चोटियों पर से धीरे-धीरे गुजर रहे थे! एक पगडण्डी वह थी, जो वन के वृक्षों के ऊपर तनी हुई थी और जिस पर बादलों में रहनेवाले कोमल, सुन्दर और गौर-वर्ण राजकुमार और राजकुमारियाँ एक-दूसरे की कमर में हाथ डले, कपोलों से कपोल मिलाये, प्रसन्नता से नाचते हुए जा रहे थे।

गुल का मन भी एक अज्ञात आह्लाद से भर गया। उसने हौले से कहा, "मैं तुझे छींट की कमीज अगले महीने बनवा दूँगा। यह कमीज अब पुरानी हो गयी है और इस नयी शलवार के साथ अच्छी नहीं लगती।"

बेगमाँ के सुन्दर होंठ, फूल की पँखड़ियों की भाँति काँप उठे, और गुल ने शीघ्रता से उन्हें साँस की सुगन्ध और होंठों की मद-भरी ओस से बोझल कर दिया।

फिर वे एक झरने के किनारे बैठ गये, और गुल ने शरारत-भरे स्वर में कहा, "कितने महीने हो गये हैं?—चार या पाँच?"

गुल उसे गुदगुदाते हुए पूछने लगा—"सच-सच बताओ, चार या पाँच?"

बेगमाँ हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी..."हाय...उई...मैं मरी।"

गुल ने उसे गुदगुदाना छोड़ दिया। बोला—"मैं बताऊँ, एक नन्ही-सी लड़की होगी?"

बेगमाँ बोली—"लड़का होगा। नन्हीं क्या तुम्हारे खेतों में हल चलाएगी? लड़का होगा, मेरी तो बरसों से यही आस है।"

गुल गम्भीर होकर बोला—"अम्माँ भी यही चाहती हैं।"

कितनी देर तक वे दोनों उस झरने के किनारे बैठे रहे, सुखद कल्पनाओं में लीन। जंगल के सन्नाटे, झरने के संगीत और बादलों के नृत्य में उन्हें अपने भविष्य का एक सुनहरा चित्र दिखाई दिया। इस चित्र में एक नन्हा-सा बालक भी था, जो अपनी माँ की गोद में किलकारियाँ मार रहा था; हँसते हुए, लड़खड़ाते हुए प्रथम पग उठा रहा था; काऊ की सोटी कन्धे पर रखे भेड़-बकरियों के गल्ले को वन में चराने के लिए ले जा रहा था दराँती से घास काट रहा था; अपने माता-पिता के कन्धे-से-कन्धा मिलाकर खेतों में हल चला रहा था। कहीं जैसे कोई शहनाई बज उठी और बेगमाँ और गुल चौंक उठे, और मुस्कराकर एक दूसरे की ओर देखने लगे।

शायद इस चित्र को उन दोनों ने ही देखा था।

इसी प्रकार धीरे-धीरे बातें करते हुए एक-दूसरे को छेड़ते हुए, बचपन और यौवन और आनेवाले जीवन के रुपहले क्षणों में घूमते हुए, उन स्वप्नों को याद करते हुए जो बीत चुके थे और उन स्वप्नों को देखते हुए जो अभी आनेवाले थे, वे वापस मोटर की सड़क पर आन पहुँचे।

सड़क पर इतनी रौनक न थी। फिर भी कभी इक्का-दुक्का ताँगा या पैदल चलनेवाले सैलानियों की टोली दिखाई दे जाती थी। गुल ने बेगमाँ को बताया कि किस प्रकार सैलानियो के आने से कश्मीर के लोगों को हर वर्ष लाखों रुपयों का लाभ होता है। श्रीनगर एक बहुत बड़ा नगर है। जिसके बीचोंबीच झेलम बहता है। जिस पर सात पुल बने हैं और जब धान की फसल कट जाएगी तो वह अवश्य अपनी बेगमाँ को श्रीनगर ले जाएगा। ताकि वह उन सुन्दर दृश्यों को अपनी आँखों से देख ले जिनके लिए संसार-भर के सैलानी वहाँ खिंचे चले आते हैं।

एक चिनार के नीचे चार-पाँच सैलानी ताश खेल रहे थे। बेगमाँ और गुल उनके निकट से गुजरे। और बेगमाँ उन सैलानियों के सुन्दर कपड़ों की ओर आश्चर्य से देखती रही और वे सैलानी बेगमाँ के स्वस्थ और आदर्श सौन्दर्य को देखकर चकित हो रहे थे।

चिनार के आगे एक छोटा-सा नाला था। उसे पार करके वे घाटी के ढलवान के समीप पहुँच गये। दूर नीचे नदी बहती थी, जिसके एक ओर खिलौने-जैसी पनचक्की थी, जिसमें पानी का झाग वर्फ के गोलों की भाँति उड़ता हुआ प्रतीत होता था। नदी के दूसरी ओर धान के खेत थे, जहाँ गुल काम किया करता था। उससे परे पर्वत के ऊपर उनका अपना गाँव था। सफेद कोठे, खड़िया मिट्टी से लीपे हुए, सीप के खिलौनों की तरह दिखाई देते थे। उनमें स्त्रियाँ नन्हीं पुतलियों की भाँति भीतर या बाहर जाती हुई दिखाई दे रही थीं। सूर्य की किरणों ने गाँव को भी छू लिया था। ऐसा प्रतीत

होता था कि जीवन भी पुतलियों का खेल है और इन पुतलियों की बारीक डोरियाँ, सूर्य की किरणों के तारों से बनी हैं।

जिस ऊँची घाटी पर बेगमाँ और गुल खड़े थे, उससे दो मार्ग नीचे की ओर जाते थे। एक तो सीधा ढलवान रास्ता नदी के खड्ड में जाता था और दूसरा तिरछा, पेचदार जो बल खाता हुआ, नदी तक पहुँचता था। गुल ने कहा—"मैं इस छोटे रास्ते से नीचे जाता हूँ। इस हालत में तुम्हारे लिए यह मार्ग खतरनाक भी है और यहाँ फिसलन भी बहुत है। तुम दूसरे रास्ते से आओ। मैं पनचक्की पर तुम्हारा इन्तज़ार करूँगा।"

"इन्तज़ार?" बेगमाँ ने चमककर कहा—"मैं तुमसे पहले वहाँ पहुँचूँगी।"

"एक बार पहले भी तुम मुझसे ऐसी शर्त लगाकर हार चुकी हो", गुल ने हँसते हुए कहा—"अब फिर लगाकर देख लो!"

"रही", बेगमाँ ने पूर्ण विश्वास के स्वर में कहा—"देखो, अगर मैं पनचक्की पर पहले पहुँच जाऊँ तो कल ही नयी कमीज के लिए कपड़ा मोल लेना होगा! और अगर..."

"और अगर" गुल शर्त का दूसरा रुख बताते हुए कहा—"अगर तुम हार गयी तो कल दिन-भर मेरे साथ पनीरी के खेतों में कीचड़ और पानी में...क्यों मंजूर है?"

"मंजूर है, लेकिन देखो, दौड़ना नहीं, बस चलना होगा।"

गुल ने स्वीकृति में सिर हिलाकर ढलवान के रास्ते पर छलाँग लगाई, और तेज कदमों से नीचे की ओर जाने लगा। बेगमाँ एक क्षण के लिए तो रुकी, फिर वह भी तेज कदमों से दूसरे रास्ते पर हो ली। अब की बार वह अवश्य गुल को मात देगी।

गुल प्रसन्नता से सीटी बजाता हुआ नीचे उतर रहा था। उसे पूरा विश्वास था कि वे बेगमाँ से बहुत पहले पनचक्की पर पहुँच जाएगा। मूर्ख लड़की—उसने सोचा, बेगमाँ में अभी तक बचपन की शोखी और जिद्द ज्यों-की-त्यों है। ऐसी ही बात-बात पर झगड़

पड़ती है। भला इन हालात में उसे शर्त बदनी चाहिए थी?

एकाएक उसके दिल में विचार आया कि बेगमाँ को आवाज दे और उसे रुक जाने को कहे। परन्तु दूसरा रास्ता आँखों से ओझल हो गया था और उसकी आवाज वहाँ तक पहुँच न सकती थी। उसके पग धीमे पड़ गये। उसने सोचा, यदि वह शर्त हार जाए, और बेगमाँ को पनचक्की पर पहुँच जाने दे तो वह चंचल लड़की कितनी प्रसन्न होगी। वह मुस्कराने लगा और उसने निश्चय कर लिया कि वह शर्त हार जाएगा। वह अत्यन्त धीमे-धीमे चलने लगा और अन्त में एक बड़ी चट्टान के समीप जागकर रुक गया। पाँच मिनट, दस मिनट, पन्द्रह मिनट। उसने अपने मन में अनुमान लगाया कि यदि बेगमाँ धीरे-धीरे भी चली हो तो इस समय पनचक्की पर पहुँच गयी होगी। यह सोचकर वह उठा और तेज-तेज कदमों से नीचे उतरता हुआ पनचक्की की ओर जाने लगा। पनचक्की सामने दिखाई दे रही थी। किन्तु बेगमाँ अभी तक वहाँ न पहुँची थी। उसने तो शर्त हारने का पूरा प्रयत्न किया था, किन्तु अब यह बेगमाँ का अपना कसूर था कि वह अभी तक न पहुँच सकी थी। एकाएक उसके मन में विचार आया और वह मुस्कराने लगा। "चंचल लड़की मुझे धोखा देना चाहती है। पनचक्की की दीवार की ओर में छिपी बैठी है।"

वह भागता हुआ पनचक्की के दूसरी ओर गया। किन्तु बेगमाँ वहाँ न थी। वह बेचारी अभी रास्ते में ही थी। गुल ने एक बार घाटी के ऊपर दृष्टि दौड़ाई और फिर उसने दो उँगलियों को मुँह में रखकर जोर से सीटी बजाई, जो बचपन में बेगमाँ को बुलाने के लिए बजाया करता था।

सीटी की आवाज पहाड़ों में गूँजकर खो गयी!

कुछ क्षण इसी निस्तब्धता में बीते। फिर गुल ने जोर से आवाज दी—"बेगमाँ।"

पहाड़ी के वक्ष में एक गूँज-सी उत्पन्न हुई, और फिर वही सन्नाटा छा गया।

गुल को बहुत क्रोध आया। चीखकर बोला—"यह क्या शरारत है। जवाब ही नहीं देती हो? छिपकर बैठ गयी हो? बस, तुम्हारी यही बातें परेशान करती हैं। यह कैसा मजाक है?"

गुल दूसरे रास्ते से ऊपर चढ़ने लगा। क्रोध से दाँप पीस रहा था। हर एक झाड़ी को ध्यान से देखता हुआ वह ऊपर चढ़ रहा था। "यदि इस समय बेगमाँ किसी झाड़ी या चट्टान की ओट में दुबकी मिल जाए तो—"

एक बड़ा-सा पत्थर ऊपर से लुढ़कता हुआ उसकी ओर आया। वह शीघ्र ही एक ओर हो गया। बस कुछ क्षणों का फर्क रहा, नहीं तो उसका सिर या टाँगें घायल हो जातीं।

"बेगमाँ यह क्या बेवकूफ़ी है?"

आठ-दस पत्थर एकदम नीचे लुढ़कते हुए आये। उसका पाँव फिसल गया और वह लुढ़कता हुआ नीचे नदी में जा गिरा। उसके हाथ-पाँव घायल हो गये और माथे से खून जाने लगा।

उसने चिल्लाकर कहा—"बेगमाँ! बेगमाँ!"

दूसरे रास्ते के मध्य भाग से एक मोड़ के निकट, जहाँ अंजीर का पेड़ लगा हुआ था और घनी झाड़ियाँ थीं उसे दो व्यक्ति दिखाई दिये। उनकी टाँगें नंगी थीं और वे अपने दोनों हाथों में बड़े-बड़े पत्थर उठाए हुए थे।

गुल का जैसे किसी ने गला पकड़ लिया हो। उसके रक्त का संचार रुकने लगा। उसकी आँखों के आगे अंगारे नाचने लगे। वह भागकर रास्ते पर ऊपर चढ़ने लगा। किन्तु अब उन झाड़ियों के पीछे से तीसरा व्यक्ति आया और पत्थरों की जैसे वर्षा-सी आरम्भ हो गई। गुल ने पहचाना ये वही सैलानी थे, जो थोड़ी दूर पहले घाटी के ऊपर चिनार के नीचे ताश खेल रहे थे। एक बहुत बड़ा

पत्थर तेजी से नीचे लुढ़कता हुआ आया और अपने साथ गुल को धकेलता हुआ ले गया।

गुल नदी के किनारे गिर गया, उसका गला रुँध गया था। और अब वह रुँधे गले से चिल्ला रहा था, घाटी के ओर हाथ फैलाये विनती कर रहा था—"खुदा के लिए, ...मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?...खुदा के लिए...मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है...तुम्हें खुदा का वास्ता...अपने बीवी-बच्चों का वास्ता...अल्लाह रसूल का वास्ता..."

और ऊपर से झाड़ियों की ओट से चौथा व्यक्ति प्रकट हुआ। उसका टाँगें नंगी थीं और उसके हाथ में सूसी की नयी शलवार थी।

गुल ने उठने का यत्न किया। उसके हाथों ने आस-पास के पत्थरों को अपनी हथेलियों में पकड़ने का प्रयास किया। किन्तु पत्थर उसके रक्त से लाल हो चुके थे और उसकी हथेलियों में से फिसलते गये और वह नदी के किनारे घुटनों के बल झुक गया। एकाएक लाल सूसी की नयी शलवार एक हवाई छतरी की भाँति बल खाती हुई उसके सामने आन पड़ी और पतली-पतली सुनहरी दीनियाँ पत्थरों में बिखर गयी।

दो फर्लांग लम्बी सड़क



कचहरी से लेकर लॉ कालिज तक बस यही कोई दो फर्लांग लम्बी सड़क होगी। प्रतिदिन मुझे इसी सड़क पर से गुजरना होता है—कभी पैदल, कभी साइकिल पर। सड़क के दोनों ओर शीशम के सूखे-सूखे, उदास-से वृक्ष खड़े हैं। इनमें न सुन्दरता है, न छाँव। सख्त खुरदरे तने और शाखाओं पर गिद्धों के झुंड हैं और सड़ साफ, सीधी और सख्त है। पूरे नौ वर्ष से मैं इस पर चल रहा हूँ। न इसमें कभी कोई गड्ढा देखा है, न कोई छेद। सख्त-सख्त पत्थरों पर कूट-कूटकर यह सड़क तैयार की गयी और अब इस पर कोलतार भी बिछी है जिसकी विचित्र प्रकार की दुर्गन्ध गर्मियों में तबीयत को परेशान कर देती है।

सड़कें तो मैंने बहुत-सी देखी-भाली हैं। लम्बी-लम्बी, चौड़ी-चौड़ी सड़कें, बुरादे से ढँपी हुई सड़कें जिनपर सुर्ख बजरी बिछी हुई थी। सड़कें, जिनके गिर्द शमशाद के वृक्ष खड़े थे। सड़कें...परन्तु नाम गिनवाने से क्या लाभ? ऐसे तो अगणित सड़कें देखी होंगी, परन्तु जितनी अच्छी तरह मैं इस सड़क को जानता हूँ, अपने किसी

घनिष्ठ मित्र को भी नहीं जानता। पूरे नौ वर्षों से मैं इसे जानता हूँ और प्रतिदिन अपने घर से, जो कचहरियों के पास ही है, उठकर दफ्तर जाता हूँ जो लॉ कालिज के पास ही है। बस, यही दो फर्लांग लम्बी सड़क...प्रतिदिन, सुबह और शाम कचहरियों से लेकर लॉ कालिज के अन्तिम दरवाज़े तक...सभी साइकिल पर और कभी पैदल।

इसका रंग कभी नहीं बदलता। इसकी सूरत में तबदीली नहीं आती। इसकी सूरत में पूर्ववत् रूखापन मौजूद है जैसे कह रही हो—मुझे किसी की क्या परवाह है? और यह है भी सच, उसे किसी की परवाह क्यों हो? सैकड़ों, हजारों लोग, घोड़ागाड़ियाँ, मोटरें इस पर से प्रतिदिन गुज़र जाती हैं और पीछे कोई चिह्न बाकी नहीं रहता। इसका हल्का नीला और साँवला स्तर इसी प्रकार सख्त और पथरीला है जैसे पहले दिन एक यूरेशियन ठेकेदार ने उसे बनाया था।

यह क्या सोचती है? या शायद यह सोचती ही नहीं। मेरे सामने ही नौ वर्षों में इसने क्या-क्या घटनाएँ देखती हैं। प्रतिदिन, प्रतिक्षण यह क्या-क्या नये तमाशे नहीं देखती, परन्तु इसे किसी ने मुसकराते नहीं देखा, न रोते ही। इसकी पथरीली छाती में कभी एक छिद्र भी उत्पन्न नहीं हुआ।

''अरे बाबू! मुहताज, गरीब फ़कीर पर दया कर जाओ रे बाबा। अरे बाबू, भगवान के लिए एक पैसा देते जाओ रे बाबा.. .अरे कोई भगवान का प्यारा नहीं। साहब जी, मेरे नन्हे-नन्हे बच्चे बिलख रहे हैं। अरे कोई तो दया करो इन यतीमों पर।''

बीसियों भिखारी इस सड़क के किनारे बैठे रहते हैं। कोई अन्धा तो कोई लुँज। किसी की टाँग पर एक खतरनाक घाव है तो कोई निर्धन स्त्री दो-तीन छोटे-छोटे बच्चे गोद में लिए अभिलाषा-भरी नज़रों से पथिकों की ओर देख रही है। कोई पैसा देता है, कोई

तेवर चढ़ाए निकल जाता है। कोई गालियाँ दे रहा है, ''हरामजादे, मुस्टंडे, काम नहीं करते, भीख माँगते हैं।''

काम, बेकारी, भीख।

दो लड़के, साइकिल पर सवार हँसते हुए जा रहे हैं। एक बूढ़ा अमीर अपनी शानदार फिटन में बैठा सड़क पर बैठी हुई भिखारिन की ओर देख रहा है। एक मरियल-सा कुत्ता फिटन के पहियों के नीचे दब गया है। उसकी पसली की हड्डियाँ टूट गयी हैं। रक्त बह रहा है। उसकी आँखों की उदासी, विवशता, उसकी हल्की-हल्की दर्द-भरी टाँय-टाँय किसी को भी अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती। बूढ़ा अमीर अब गदेलों पर झुका हुआ उस स्त्री की ओर देख रहा है जो एक सुन्दर काले रंग की साड़ी पहने अपने नौकर के साथ मुस्करा-मुसकराकर बातें करती जा रही है। उसकी काली साड़ी का चमकीला हाशिया बूढ़े की लालसापूर्ण आँखों में चाँद की किरण की तरह चमक रहा है।

फिर कभी सड़क सुनसान हो जाती है। केवल एक जगह एक शीशम के वृक्ष की छिदरी छाँव में एक ताँगेवाला घोड़े को सुस्ता रहा है। गिद्ध धूप में शाखाओं पर बैठे ऊँघ रहे हैं। पुलिस का सिपाही आता है—एक ज़ोर की सीटी—ओ ताँगेवाले, यहाँ खड़ा क्या कर रहा है? क्या नाम है तेरा? करूँ चालान? 'हुजूर!' हुजूर का बच्चा, चल थाने! 'हुजूर!'...यह थोड़ा है...खेर जा, तुझे छोड़ता हूँ।

ताँगेवाला ताँगे को सरपट दौड़ाये लिए जा रहा है। रास्ते में एक 'गोरा' आ रहा है। सिर पर टेढ़ी टोपी, हाथ में बेंत की छड़ी, गालों पर पसीना, होंठों पर किसी डांस का सुर...

''खड़ा कर दो कैंटोमेंट।''

''आठ आने साहब।''

''वैल, छः आना।''

"नहीं, साहब।"

"क्या बकटा है? टुम..."

ताँगेवाले को मारते-मारते बेंत की छड़ी टूट जाती है। फिर ताँगेवाले का चमड़े का हंटर काम आता है। लोग एकत्रित हो रहे हैं। पुलिस का सिपाही भी पहुँच गया है, "हरामजादे, साहब बहादुर से माफी माँगो।" ताँगेवाला अपनी मैली पगड़ी के पल्लू से आँसू पोंछ रहा है। लोग बिखर जाते हैं।

अब सड़क फिर सुनसान है।

शाम के धुँधलके में बिजली के लट्टू चमकने लगे। मैंने देखा कि कचहरियों के निकट कुछ मज़दूर—बाल बिखरे...मैले वस्त्र पहने आपस में बातें कर रहे हैं।

"भैया, भरती हो गया?"

"हाँ।"

"वेतन तो अच्छा मिलता होगा?"

"हाँ।"

"बढ़ियो के लिए कमा लाएगा। पहली बीवी तो एक फटी साड़ी में रहती थी।"

"सुना है जंग शुरू होनेवाली है।"

"कब शुरू होगी?"

"कब? इसका तो पता नहीं—मगर हम गरीब ही तो मारे जाएँगे।"

"कौन जाने गरीब मारे जाएँगे कि अमीर।"

"नन्हा कैसा है?"

"बुखार नहीं टलता, क्या करें? इधर जेब में पैसे नहीं हैं, उधर हकीम से दवा..."

"भरती हो जाओ।"

"सोच रहे हैं।"

"राम-राम।"

"राम-राम।"

फटी हुई धोतियाँ, नंगे पाँव, थके हुए कदम—ये कैसे लोग हैं। ये न तो स्वाधीनता चाहते हैं, न स्वतन्त्रता। ये कैसी विचित्र बातें हैं—पेट, भूख, रोग, पैसे, हकीम की दवा, जंग।

लट्टुओं का पीला-पीला प्रकाश सड़क पर पड़ रहा है।

दो औरतें—एक बूढ़ी, एक जवान, उपलों के टोकरे उठाये, खच्चरों की तरह हाँफती हुई गुजर रही हैं। जवान औरत की चाल तेज है।

"बेटी, जरा ठहर तो।" बूढ़ी औरत के चेहरे पर झुर्रियों का जाल है। उसकी चाल मध्यम है और स्वर में विवशता।

"बेटी! जरा ठहर, मैं थक गयी हूँ...मेरे भगवान!"

"माँ, अभी घर जाकर रोटी पकानी है, तू तो बावली हुई है।"

"अच्छा बेटी, अच्छा बेटी।"

बूढ़ी औरत जवान औरत के पीछे भागती हुई जा रही है। बोझ के कारण उसकी टाँगे काँप रही हैं। उसके पाँव डगमगा रहे हैं।

वह दशाब्दियों से इसी सड़क पर चल रही है। उपलों का बोझ उठाये हुए, कोई उसका बोझ हल्का नहीं करता। कोई उसे क्षण-भर के लिए सुस्ताने नहीं देता। वह भागी हुई जा रही है। उसकी टाँगें काँप रही हैं। उसके पाँव डगमगा रहे हैं। उसकी झुर्रियों में चिन्ता है और भूख तथा दशाब्दियों की पराधीनता।

तीन-चार सुन्दर युवतियाँ भड़कीली साड़ियाँ पहने, बाँहों में बाँहें डाले चली जा रही हैं।

"बहन, आज शिमला पहाड़ी की सैर करें।"

"बहन, आज लारेंस गार्डन चलें।"

"बहन, आज अनारकली।"

"रीगल?"

"शट-अप यू फूल।"

आज सड़क पर लाल हलवान बिछा है। आर-पार झंडियाँ लगी हैं। यहाँ-वहाँ पुलिस के सिपाही खड़े हैं। किसी बड़े आदमी का आगमन है तभी तो पाठशालाओं के छोटे-छोटे लड़के नीली पगड़ियाँ बाँधे सड़क के दोनों ओर पंक्तियों में खड़े हैं। उनके हाथों में छोटी-छोटी झंडियाँ हैं। उनके होंठों पर पपड़ियाँ जम गयी हैं। उनके चेहरे धूप की गर्मी से तमतमा उठे हैं, इसी प्रकार खड़े-खड़े वे डेढ़ घंटे से बड़े आदमी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जब वे पहले-पहल यहाँ सड़क पर खड़े हुए थे तो हँस-हँसकर बातें कर रहे थे, अब सब चुप हैं। कुछ लड़के एक वृक्ष की छाँव में बैठ गये थे। अब अध्यापक उन्हें कान से पकड़कर उठा रहे हैं। शफी की पगड़ी खुल गयी थी, अध्यापक उसे घूरकर कह रहा है, "ओ शफी, पगड़ी ठीक कर।" प्यारेलाल की शलवार उसके पाँव में अटक गयी और नाड़ा जूतियों तक लटक रहा है, "तुम्हें कितनी बार समझाया है, प्यारेलाल!"

"मास्टर जी, पानी!"

"पानी कहाँ से लाऊँ? यह भी तुमने अपना घर समझ रखा है क्या? दो-तीन मिनट और इन्तज़ार करो। बस, अभी छुट्टी हुआ चाहती है।"

दो मिनट, तीन मिनट, आधा घण्टा।

"मास्टर जी, पानी।"

"पानी, मास्टर जी।"

"मास्टर जी, बड़ी प्यास लगी है।"

परन्तु मास्टर जी अब उस ओर ध्यान नहीं देते। वह इधर-उधर दौड़ते-फिरते हैं, "लड़कों, होशियार हो जाओ। देखो, झंडियाँ इस तरह लहराना। अबे, तेरी झंडी कहाँ है? कतार से बाहर हो जा,

बदमाश कहीं का।...सवारी आ रही है।"

मोटर-साइकिलों की फट-फट, बैंड का शोर, पतली और छोटी झंडियाँ बेदिली से हिलती हुईं—सूखे हुए कंठ से मरे-मरे-से नारे...

बड़ा आदमी सड़क पर से गुजर गया। लड़कों की जान में जान गई। अब वे उछल-उछलकर झंडियाँ तोड़ रहे हैं। शोर मचा रहे हैं।

खोंचेवालों की आवाज़ें...रेवड़ियाँ, गर्म चने, हलवा-पूरी, कबाब।

एक खोंचेवाला एक तुर्रेवाले बाबू से झगड़ रहा है, "आपने मेरा खोंचा उलट दिया। मैं आपको नहीं जाने दूँगा। मेरा तीन रुपये का नुकसान हो गया। मैं गरीब आदमी हूँ। मेरा नुकसान पूरा कर दीजिए तो जाने दूँगा।

सुबह के हल्के-हल्के प्रकाश में भंगी सड़क पर झाड़ दे रहा है। उसके मुँह और नाक पर कपड़ा बँधा हुआ है—जैसे बैलों के मुँह पर, जब कोल्हू चलाते हैं, वह धूल में अटा हुआ है और झाड़ू दिये जा रहा है।

म्यूनिसिपैलिटी का पानीवाला छकड़ा धीरे-धीरे सड़क पर छिड़काव कर रहा है। छकड़े के आगे जुते हुए दोनों बैलों की गर्दनों पर घाव हो गया है। छकड़ेवाला ठिठुरता हुआ कोई गीत गाने की कोशिश कर रहा है। बैलों की आँखें देख रही हैं कि अभी सड़क का कितना भाग बाकी है।

सड़क के किनारे एक बूढ़ा भिखारी मरा पड़ा है। उसके मैले दाँत होंठों के भीतर धँस गये हैं। उसकी खुली हुई ज्योतिहीन आँखें आकाश की ओर ताक रही हैं।

"भगवान के लिए मुझ गरीब पर दया कर जाओ रे बाबा।"

कोई किसी पर दया नहीं करता। सड़क मौन और सुनसान है। यह सब कुछ देखती है, सुनती है, परन्तु टस से मस नहीं होती। मनुष्य के मन की तरह निर्दयी और वहशी है।

अत्यन्त दुख और क्रोध की हालत में मैं प्रायः सोचता हूँ कि यदि इसे डायनामैट लगाकर उड़ा दिया जाए तो फिर क्या हो। एक धमाके के साथ इसके टुकड़े आकाश में उड़ते नज़र आयेंगे। उस समय मुझे कितनी प्रसन्नता होगी, इसका कोई अनुमान नहीं कर सकता। कभी-कभी इस पर चलते मैं पागल-सा हो उठता हूँ। चाहता हूँ कि उसी दम कपड़े फाड़कर नंगा सड़क पर नाचने लगूँ और चिल्ला-चिल्लाकर कहूँ, ''मैं मनुष्य नहीं हूँ, मैं पागल हूँ, मुझे मनुष्यों से घृणा है—मुझे मनुष्यों से घृणा है। मुझे पागलखाने की दारुणता प्रदान कर दो, मैं इन सड़कों की स्वतन्त्रता नहीं चाहता।''

सड़क मौन है और सुनसान। ऊँची शाखाओं पर गिद्ध बैठे ऊँघ रहे हैं।

यह दो फर्लांग लम्बी सड़क है।

❑❑